ग्रन्थार्पण.

श्रीयुत् सेठजी बाहादूरमलजी बांठीया-भीनासरवाला
हींदी अनुवाद लेखक पाससे स्वीकारते हैं.

श्रीयुत् सेठजी वहादुरमलजी वांठिया, भीनासर.
इस पुस्तक को लागत मात्र से कम मूल्य में देने
के लिये

समर्पण ॥

२२८८

श्री सेठजी बहादुरमलजी बांठिया,

भीनासर

चारित्र नायक महात्मा पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज की आपने अनुकरणीय सेवा की थी। धर्मज्ञान की अभिवृद्धि के लिये आप आगम व पुस्तकोंकी प्रभावना विशाल हृदय से कर रहेहो, इस पुस्तककी लागत से बहुत कम में प्रचार करने के लिये आपने रु०१,०००) बिनामांगे मेरे पास भेजकर मेरा उत्साह को प्रफुल्लित रक्खा है।

मै आपकी समाज सेवाओं के आंशिक स्मरण के उपलक्ष्य में यह हिन्दी संस्करण आपके करकमलों में सादर सप्रेम समर्पण कर कृतकार्य होता हूं।

श्रीसंघका सेवक

जौहरी दुर्लभजी

जैय कंते पिए भोए लद्धे विपिठि कुव्वई ।
साहीणे चयई भोए से हु चाइत्ती वुच्चइ ॥

श्री दशवैकालिक सूत्र

यदि तुम अपना धन गुमा चुके हो तो तुम यह समझ लो कि, तुम्हारा कुछ भी गुमा नहीं, अगर तुम अपना स्वास्थ्य खो चुके हो तो तुम जानलो कि तुम्हरा कुछ खोगया है और कदाचित् तुमने अपना चारित्र नष्ट कर दिया है तो भली भांति जान लो कि तुम अपना सर्वस्व नष्ट बरन्न करचुके हो ।

—एक विद्वान्

Lives of great men, all remind us,
We can make our lives sublime, !

–Long fellow.

क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षा क्षरमुखरमुखान् दुर्मुखान् दषयन्तः

सत्पुरुष तो निन्दा भरे कटुवचन बोलने वाले दुष्टों को अपनी क्षमाद्वारा ही दूषित–दण्डित–लज्जित कर देते हैं ।

यह महात्माओं का वृत है प्रत्येक सज्जन को होना ही चाहिये ।

हिन्दी अनुवाद ।

विचार विवेचन अपनी निज की भाषा में अच्छी तरह हो सकता है। भाषान्तर करने से तो भाषा की असली खूबी में अंतर रह जाता है। गुजराती से इसका हिन्दी अनुवाद कराया गया है अगर हिन्दी में ही इसकी स्वतन्त्र रचना होती तो विशेष आकर्षक होती। मैं अपनी शक्ति अनुसार जैसा कर सका वैसा पाठकों के भेट करता हुं। अनुवादक की त्रुटी के लिये मूल लेखक जिम्मेवार नहीं हो सकता।

ये अनुवाद अनुभवी श्रावकों के पास भेजा गया था, उन महानुभावों की सलाह अनुसार कम-ज्यादा किया गया है। उन महानुभावों का आभार मानते हुवे, सुज्ञ पाठकों की सेवा में नम्र अर्ज करता हुं कि, हिन्दी की दूसरी आवृत्ति शीघ्र ही निकालनी पड़ेगी, इसलिये इस अनुवाद में कम वेशी करने अथवा सुधारने के लिये जो सूचनाएं मिलेंगी उनका सादर स्वीकार किया जावेगा।

जिन महात्मा का यह जीवन चरित्र है उनका मुख्य आदर्श गुणग्राहकता था, पुस्तक पढने वाले सब गुणग्राहक बुद्धि से ग्रन्थ का अवलोकन करेंगे तो मेरा श्रम सार्थक होगा और लेखक का शुभ आशय समझ में आवेगा।

तन्दुरस्त मनुष्य शक्कर खाता है कोई नमकीन सोडा पीता है लेकिन बीमार को तो वैद्यराजजी कुनाइन जैसी कड़वी औषधी

देते हैं उससे उसका आशय केवल बीमारी को दूर करना होता है इस जीवन चरित्र में से अपनी २ प्रकृति अनुसार मिष्टान्न, नमकीन व कुनाइन लेने का अधिकार पाठकों को है । अमूल्य औषधियों का यह भंडार है, शारीरिक, मानसिक सब रोगों के लिये दवा मिलेगी, समभाव से, इर्षारहित दृष्टि से देखने से निर्मल चक्षुओं को अद्‌भुत दृश्य मिलेगा।

संयम सरिता का वेग शिथिल होने से श्रद्धा में भी शिथिलता आजाती है, परिणाम में श्रावकों को उदासीनता होजाती है। चतुर्विध संघ का, भविष्य श्रेय के लिये इस जीवन चरित्र में सयंम शुद्धि के लिये जोर दिया है और पुष्टि के लिये पवित्र सूत्रों के सिवाय अनुभवियों के विवेचन उद्‌धृत करके साधु जीवन की जड़ मजबूत की है। जिस महात्मा का जीवन ही चारित्र का आदर्श नमूना था, जिन्होंने चारित्र के लिये रात्रि दिवस उजागरा किया था, जिनके रग २ में संयम श्रोणित वहता था, उनके जीवन चारित्र में चारित्र के लिये जितना भी लिखा जावे उतना कम है,

मैं साफ दिल से जाहिर करता हुं कि चारित्र के लिये जो लिखा है वो समुच्चय ही लिखा है किसी खास व्यक्ति व समाज को अपने ऊपर घटाने की संकोच वृत्ति नहीं रखना चाहिए, कान्फरन्स प्रकाश का ता० ३१ जुलाई का २० वें अंक में जाहिर कर चुका हुं कि "पूज्य श्री के जीवन चारित्र में किसी की निन्दा व आक्षेप कारक कुछ भी नहीं लिखा गया है. अजमेर वगैरह स्थानों की सत्य घटनायें भी मैंने शान्ति के लिये जीवन चरित्र में नहीं दी है. सिर्फ चारित्र संरक्षण के लिए आगमोक्त आज्ञानुसार वे विद्वानों

कायिक, वाचिक, मानसिक पाप किया ही नहीं तथा जिन्होंने उपकार समूहों से संसार को उपकृत किया है, और जिन्हों ने अणुमात्र भी दूसरों के गुणको पर्वत के समान मानकर निरन्तर मनमें प्रसन्न रहते हैं ऐसे सत्पुरुष संसार में विरले ही होते हैं, ऐसे चारित्र्यवान मनुष्यों का जीवन, जीवनचरित्र तरीके लिखने का लायक है इस संसार में जन्म लेकर सिर्फ मौजमजा में, स्वार्थान्धता में, आलस्य में और जीवनकलह में जिसने अपना जीवन बिताया है उसका जीवनचरित्र कभी भी नहीं लिखा जाता है, ज्ञान चारित्र और श्रेष्ठगुणों से संपादित हुआ और मनुष्यों से प्रशंसित जो क्षणभर भी जीया है उन्हीको विचारशील जन इस संसार में जीवित कहते हैं।

प्रबल वैराग्य, घोर तपश्चर्या, निश्चलमनोवृत्ति, अनुपम सहनशीलता, इत्यादि उत्तमोत्तम सद्गुणों से जीवन को परम आदेश रूप में परिणत कर भव्यजीवों के हृदयपट पर असाधारण असर उत्पन्न करनेवाले और अनेक राजा महाराजाओं को अहिंसा धर्मके अनुयायी बनानेवाले धर्मवीर सत्पुरुष पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज जैसे उत्तम रीति की आध्यात्मिक विभूति की जीवनचर्या संसार के सामने शुद्ध स्वरूप में उपस्थित करते हुए हमें परम आह्लाद होता है, श्री माहावीर भगवान की आज्ञारूप ध्रुवतारा के ऊपर निश्चल लक्ष्य रख कर अपने ध्येय पहुंचाने के लिए इनका

जीवन प्रवाह सतत बहता था, आर्य प्रजा के आध्यात्मिक अधः पतन को देख कर इनकी आत्मा बहुत दुख पाती थी, आर्य प्रजा के आध्यात्मिक जीवन को पुनरुज्जीवन करने के लिए पूज्यश्री दिन रात उद्यम में तत्पर रहते थे, उक्त पूज्यश्री ने अपनी पवित्र जीवन चर्या से जगत के उद्धार का मार्ग दिखाया है जैन अथवा जैनेतर समस्त प्रजा के ऊपर इनका समभाव था। और सभी के ऊपर उपदेश का समान ही प्रभाव पडता था बहुत से मुसलमान गृहस्थ इनको पीर के समान मानते थे, बडे २ राजा महाराजा इनके चरण कमल पर शिर झुकाते थे, इसतरह के इस समय में एक आदर्श महा पुरुष की जीवन घटना हमें जिस प्रमाण में और जिस स्वरूप में मिली उसी प्रमाण में और उसी स्वरूप में हमने उस जीवन घटना को इस पुस्तक के अन्दर गूंथी है।

महात्मा गांधीजी के समकालीन पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज साहब की समाज सेवा जैनप्रजा में जाहिर ही है, उन पूज्य श्री का पवित्र नाम उच्च मे उच्च माननीयों में भी मान्य शब्द है, निर्मल चारित्र्य और अवर्णनीय गुण ग्राहक बुद्धि से पूज्यश्री का विजय विजयी और निराभिमानी थे, शुद्ध संयम की आवश्यकता वे श्वासोच्छ्वास के समान मानते थे।

सामान्य व्यापारी कुल में पैदा होकर न तो था विशेष वाग्विन्यास और न तो था विशेष अभ्यास, तौभी आप दिग्विजय

कर सके और राजा महाराजा भी आपके चरण कमल में शिर झुकाने में आनन्द मानने लगे। उन पूज्य श्री की गंभीरता, और वह विचारमय गहन मुखमुद्रा, अल्प किंतु मार्मिक वचन और विचार में सिद्धांत पर तथा कर्म क्षेत्र में साध्य सिद्धि पर, उनका अभेद्य, अखंड व अस्खलित प्रवाह और उनकी अपूर्व कार्यशक्ति, और उपद्रव से आए हुए असह्य दुःख में सन्तप्त होकर पार उतरा हुआ उनका विशुद्ध जीवन और उनका अगाध भक्तिभाव, तथा अपूर्व संघसेवा इन सब बातों का स्मरण जिन्हे पूरा २ होगा पूज्य श्री की जीवनी की भव्यता का यथार्थ ज्ञान उनकी ही समझ में आवेगा, समकालीन कार्य-क्षेत्र में अमुक मतभेद हो जाने पर भी अभी भी जैन जगत एक स्वर से पूज्यश्री का गुणानुवाद करता है, यही बात उनके सपूर्ण गौरव का साक्षी है, इनका आत्मगौरव और इनका आदर्श पहचानने लायक शक्ति अपने में नहीं थी, इनकी तेज प्रभा में खडा रहने लायक पवित्रता अपने में नहीं थी, इनकी तपस्या की कीमत अपने को नहीं थी, उन पूज्यश्री के परलोकवास पर आंसू बहाना अथवा देश के शिरोमणि को पहचानना इस बात में अपने को बाधा आती है यह अपना हतभाग्य ऊपर आंसू बहाना चाहिए।"

चारोंतरफ अविश्रान्त विहार कर और निराशाका निकन्दन कर उत्साह के संचार करने में पूज्यश्री ने कुछ बाकी नहीं रक्खी

थी। धार्मिक-शिथिलता और अज्ञानता के बदले श्रद्धा और धार्मिक ज्ञान की उन्नति की व करवाई है। कायरता के बदले चैतन्य फैलाये; सम्प्रदाय के कल्याण करने में एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गमाये, शिथिलाचारियों को अपने उग्र आचार और संयमों से मौन उपदेश देकर चिताये, ऐसा महात्मा पुरुष के जीवन आदर्श पहचानने का अहोभाग्य प्राप्त हो इसको हमतो अपनी जिन्दगीमें एक अपूर्व लाभ समझते हैं।

चारित्र घटना के संग्रहार्थ मैंने खुद प्रवास किया है, इसके अलावा चारित्रनायक की जन्मभूमि तथा जहांजहां विशेष आवागमन रहा, वहां वहां मैने अपने सहायकों को भेजे, सच्ची घटना समूहो को संगूह करने लायक श्रम उठाये इसी लिये पुस्तक को प्रसिद्ध होने में कल्पना से बाहर विलम्ब हुआ है। प्रिय रसियाटेकरी की मुलाकात हमारे आर्टिस्ट मित्र. मि. तलसानियांजीने करके छायाचित्र तैयार किया है, काल्पित कथा से तथा असत्य घटनाओं से दूर रहने की पूर्ण कोशीस की गई है, चारोंतरफ फिरकर देखा, समझा, सुना, खोजा उन्ही सभोंका यह संग्रह है, पाठक हंस चोंच के समान सार ग्रहण कर लेवेंगे।

ब्यावर निवासी भाई मोतीलालजी रांकाने चरित्र लिखने का प्रयास शुरु किया, उनका विचार था कि जविन चरित्र हिन्दीमें लिखें

लेकिन इसी विषयमें वे हमारे प्रयास को देखकर वे भाई साहब ने अपना संग्रह हमें देदिया और हमारे कार्य में सहानुभूति दिखाई, उनकी इस सहृदयता ऊपर कृतज्ञता प्रगट करते हमें हर्ष होता है।

इस कार्यमें भाई श्री झवेरचन्द जादवजी कामदार की हमें सहायता नहीं मिलती तो इस कार्य की सफलता शायदही होती, वे भाई शरीर तथा परिवार की परवाह नहीं करते हमें दी हुई सहायता की प्रतिज्ञा को पालने में और इस चरित्र को आकर्षक बनाने में जो आत्मभोग दिये हैं इस आत्मभोग से हम उन्हें अपनी सार्थकता में भागीदार तरीके जाहिर कर इस पुस्तक में उनके नाम जोडने में आनन्द मानते हैं।

पूज्य श्री के परम अनुरागी शतावधानी पण्डित महाराज श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी तथा और मुनि महाराजों ने पुस्तक को सुशोभित करने में जो श्रम उठाये हैं उन मुनिराजों के तथा हमारे मुरब्बी श्री श्रीमान् कोठारीजी श्री बलवन्तसिंहजी साहब वगैरह शुभेच्छुको ने उपयोगी सलाह देकर हमारा प्रयास सरल बनाये हैं उन सभों के मेरे पर परम उपकार हैं।

साक्षरों में श्रेष्ठ शीघ्र कविवर श्रीयुत श्रीन्हानालालजी दलपतराम कवि एम्. ए. ने इस पुस्तक का उपोद्घात लिखने की कृपाकर पुस्तक को विशेष पवित्र बनाई है इस उपकार का नोध लेते हमें परम हर्ष होता है।

इस पवित्र पुस्तक के लिए कलम चलाने में बहुत सावधानी रखनी पडी है जो पवित्र पुरुष की जीवनी लिखने में योग्यता के बाहर साहस स्वीकारा, इस गुण ग्राहक महात्मा के जीवन प्रसंग लेखन में सहज भी किसी की जी दुखे ऐसा एक अक्षर भी नहीं लानेका ध्यान रक्खा है इसी सबब से कितनी सच्ची घटना का भी विवेचन छोडा गया है।

काठियावाड़ के दो चातुर्मास की वार्ता विस्तार पूर्वक लिखी गई है। वह बहुतों को पक्षपात रूप दीख पडेगा, लेकिन सच्चा कारण यह है कि, उन दोनों चातुर्मासों की सच्ची २ घटनाओं को अपनी नजर से देखने का अवसर हमें मिला था, इसलिए दूसरे स्थलों के लिए अन्याय नहीं होना चाहिए, अतएव दूसरी आवृत्ति और हिन्दी अनुवाद में इन बातों को संक्षेप करने की सलाह हमें मिली है।

अमूल्य मनुष्य जन्म संयम सार्थक सम्बन्ध में सूत्र, महात्मा और अनुभवियों का वचनामृत उद्धृत करके जो विचार और विनन्ति जाहिर किए गए हैं वे सबके समान समझने के लायक हैं, कोई भी खास व्यक्ति अथवा किसी मण्डली के लिये समझ लेने का संकुचित विचार न करते हुए विशाल और गुणग्राहक बुद्धि से पठन करने के लिए सविनय प्रार्थना है।

निर्दोष केवलो हरिः

श्रीजैपुर	श्रीसंघ सेवक
ज्ञानपंचमी सं० १९७९	दुर्लभजी त्रि० जौहरी

उपोद्घात ।

बाल्यावस्था में जब कभी वर्षा आदि होने से न्हाने में आलस्य होता था तब एक वाक् सूत्र सुन पड़ता था, 'जाजा रोया ढूंढिया' उसवक्त यह स्वप्न में भी क्योंकर आता कि सं० १९३२ से सं० १९७८ तक देखेगये साधु समूहों में पुण्य-निर्मल परम साधूराज ज्ञानियों में गुणसागर, परम ज्ञानवीर, सन्यासिओं में संन्यस्त भीष्म, परमसंन्यासी के ढूंढिया सम्प्रदाय में से दर्शन होगा ! लेकिन ऐसा ही हुआ, जो जिसको खोजे सो उसे मिलता है, नहीं खोजने वाले को मिलता नहीं, ढूंढने वाले सब ढूंढिया ही कहाते हैं, कलापी का प्रख्यात गजल का आध्यात्मिक अर्थ समझने वाला मनुष्य मात्र सिर्फ एक यही भावना पुकारते हैं ।

पैदा हुवा हूं ढूढनें तुझको सनम !
वैष्णव भक्तराज सिर्फ यहीं गाते हैं कि
वनमें भूल रहा हूं कहो कहां गयो कान,

वेदान्तिओं की सूत्रावली में पहला सूत्र यही है कि—

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"

बाईबल भी कहता है कि ढूंढो तो मिलेगा हरएक

मनुष्य को ढुंढिया शोधक-शाधक मुमुक्षु होना ही चाहिए अपने प्रभुको ही खोजना चाहिए।

भरतखण्ड की आर्यवाटिका में जल, जमीन, हवा मान की फलद्रूपता एक ही है, लेकिन महावन सरीखी इस आर्यवाटिका में उद्यान अथवा कुंज अनेक तथा जुदा २ हैं। इसमें चतुर माली की बनाई हुई क्यारियां, लता मंडप, जल, फुवारा वगैरह तरह २ के हैं, जिनमें कि सृष्टि सुन्दरी की चौखटसारीके अनेक रंग और अनेक तरह के दृश्य तथा तरह २ की लताओं से आच्छादित लता मण्डप की अनेक पुष्प परिमल से शोभायमान घूंघट घटा के समान भरतखण्ड की इस आर्यवाटिका में नानारंग वाली संसार रूपी क्यारी के अनेक रंग वाला संस्कृति मण्डप है, श्री महावीर स्वामी के रोपे हुए विकसित मञ्जरी युक्त विशालनी शाखा वाला जैन-धर्म रूपी आम्रवृक्ष और उस आम्रवृक्ष की संस्कृति रूपी कुपल उस में कवितारूप मंजरी, जिसमें धर्म ज्ञान, शील, तपस्यारूपी फलों से पृथ्वी यशस्वी हुई है धार्मिकता रूपी सरोवर से इस आर्यवाटिका अजब तथा अनोखी होरही है संसार के शास्त्रियों को तथा मानव संस्कृति के मीमांसकों को वह धर्म सहकार भूलने लायक नहीं है।

१९ वीं सदी में महर्षि दयानन्द ने हिन्दू धर्म, हिन्दू शास्त्र और हिन्दू संसार के लिए जो कुछ किया, उन सभी बातों को १५ वीं

सदी में जैन धर्म, जैन शास्त्र और जैन संसार के लिए लोकाशाह ने की थी ई० सं० १४६८ में गुरू नानक का जन्म हुआ और तुरंत ही १५१७ ई० में धर्मवीर मार्टिन ल्यूथर ने केथोलीक सम्प्रदाय में जन्म लेकर अन्ध श्रद्धा का समूल नाश करने का प्रयत्न किया, युरोपीय उस इतिहास से करीब ५० वर्ष पहले अर्थात् १४५२ में जैनधर्म के ल्यूथर रूपी सूर्य गुर्जरपाट नगरी में ऊगे, ई० सं० १४७४ में लोकागच्छ की स्थापना हुई, इस गच्छ के संस्थापक ने महर्षि दयानन्द और ल्यूथर के समान मूर्तिपूजा का निराकरण किया। मूर्ति-पूजा को धर्म विरुद्ध साबित की, शिथिलाचारी साधुओं का व्रत संयम दृढ किया, जादू टोना अध्यात्म मार्ग का अंग नहीं ऐसा समझाया, धर्म सूत्रों को अपने हाथ से लिखकर धर्माभिलाषियों को सम-झाया, चतुर्विध संघकी धर्म विरोधी भावनाओं को सत् धर्म रूपमें लाई, भेद इतना ही रहा कि महात्मा ल्यूथर पादरी थे, दयानन्द स्वामी सन्यासी थे, और लोकाशाह आर्य महा आदर्श दिखाने में निपुण गृहस्थाश्रमी साधुराज थे, जनक विदेही के समान संसार भार धुरन्धर संन्यासी थे। अदीक्षित किन्तु भाव दीक्षित थे, जैन सन्त जिनप्रभुकी उपासना के लिए ४५ सन्यस्थ सुभटों को दीक्षा दिलवाकर समस्थ आर्यावर्त में भ्रमणार्थ छोड़े, ख्रिस्त धर्म सुधारक जर्मन ल्यूथर के ५० वर्ष पहले अमदावाद में यह घटना हुई। ल्यूथर के समस्त ख्रिस्ती जगत को संभार रहा है लोकाशाह के अमदा-

बाद भी आज उतनाही सम्हार रहा है वो जैन प्रोटेस्टेंट सम्प्रदार के साधुवर थे।

श्रीलालजी महाराज अर्थात् दर्शनप्रिय भव्यमूर्ति सिर्फ नेत्र को लोभाने वाले नहीं, किन्तु नेत्र में अद्भुत रस आंजने वाले, उनकी आत्मा के समानही उनके देह वज्र भी सुदृढ, बलवान् और ओजस्वी था, उनकी सामुद्रिक शास्त्रमें श्रद्धाथी, और उनकी आकृति ही उनके गुणों को साफ जाहिर करती थी, उनकी देह मुद्राही उनकी महानुभाविता जता रही थी, उनकी देहमुद्रा थी किसी सजावट से नटमुद्रा बताने वाली नहीं थी, किन्तु स्वभाविक मुद्रा थी सिर्फ दो श्वेत वस्त्र मात्र उनके देह ढाकने के लिए थे, ब्रह्मचर्य के सूचक शरीर सम्पत्ति से वे मनुष्यों में नर गजेन्द्र के समान शोभायमान थे। नगर के मुख्य दरवाजा के कपाट के अर्गल समान उनका भुजदण्ड था, देव दुर्ग के समान विस्तीर्ण वक्षस्थल था, कमल पुष्प के पत्र के समान घेरा वाला भव्य मुख मण्डल और आम्र के नवीन पल्लव समान भालपत्र था, साधुता का शिखर समान कुम्भस्थलसा गण्डस्थल कुसुमपल्लव के भार से झुकी हुई लतासी भरी व झुकी हुई भ्रूलता और उस भ्रूवल्ली के नीचे नगर द्वार अथवा राजद्वार लिखे हुए सूर्य चन्द्र के समान नयन मण्डल था, इन सब के ऊपर ध्वजासी फरकती मेघ के समान वर्ण वाली बाल रेखा मानो वैराग्य की कलगीसी उड़रही थी, ज्ञान पाद के

ऊपर लगाया हुआ विशाल पद्मासन और हस्ताङ्गुली की ज्ञान मुद्रा पेगम्बर भावना का पूर्ण अंश सूचित करती थी, श्रीलालजी महाराज का दर्शन होने पर सभी के मन में बुद्ध भगवान् की स्मृति जागृत होती थी, आठ २ दिन के उपवास करने पर भी दो २ हजार श्रोताओं में सिंह गर्जना के समान गर्जते हुए इस कालिकाल में श्री १००८ श्रीलालजी महाराज को ही देखे, व्याख्यान के बीच बीच में साधुपरिवार यह स्तोत्र गाते थे—

" चतुरा ! चेतजोरे ।

ललना लेख जो रे ! के जोवन दो दिन रो झलकार ।
अपने ही रंग में रंग दो
प्रभुजी ! मोको अपने ही रंग में रंग दो "

इस प्रकार के स्तोत्र जब २ उनके सन्त समूह उच्च स्वर में खींच कर ललकारते थे, तब २ राजगृही नगरी में नगर दरवाजा पर बुद्ध भिक्षुकों का नगर कीर्तन की भावना एक दम जागृत होती थी, कोई चतुर चित्रकार अगर बुद्ध भगवान की मूर्ति बनाने के लिये कोई मनुष्यादर्श (Model) खोजता हो तो श्रीलालजी महाराज की भव्याकृति से बढ़कर इस संसार में और कोई आकृति मिलना मुशकिल था, रतलाम में आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज का कहा हुवा—" सागर वर गंभीरा " इस आशीर्वाद

भावना से श्रीलालजी महाराज साकार आत्मा की प्रतिमाही थे।
इस प्रकार के साधुदेव के दर्शनार्थ वि० सं० १९६७ में चातुर्मास
के अन्दर चोरवाड़ से पधीआरजी राजकोट पधारे थे।

श्रीलालजी महाराज साहब की व्याख्यान भाषा हिन्दी, मारवाड़ी, गुजराती इन तीनों का अजब संमिश्रण थी, जिसको सुन कर बड़े २ भाषा शास्त्रियों को अपने भाषा पांडित्य का गर्व निकल जाता था, यद्यपि उस भाषा की रचना व्याकरण नियमानुसार नहीं थी तथापि उस वाक्य रचना में क्या ज्ञान, व क्या वैराग्य, क्या तप और क्या संन्यास, ऐसे ही क्या इतिहास और क्या उदारता सभी विराजमान थे। उदारमत वादियों की अनुदारता तथा सांप्रदायिक छोटी २ बातों में तडफडाने वालों की युक्तिवाद बहुतसा सुना तथा देखा लेकिन उन सबों से हमारे पूज्य श्री की व्याख्यान शैली निराली ही थी, आधुनिक शिथिलाचारिओं से उलट साम्प्रदायिक आचारों से व्रत, नियम, संयम पलवाते हुए साम्प्रदायिक दृढव्रती महा तपस्वी इन सन्तदेव की हृदयहारिणी व्याख्यान वाणी की उदारता सीमाबंध नहीं थी, किन्तु सिंह के विचरने लायक वन की विस्तारता के समान निस्सिम थी। आकाश के समान विशाल थी। ....

गणित विषय में पाश्चात्य गणित के अंदर वीली अनटीलीअन से संख्या गणना की हद होती है, और आर्यगणित में परार्ध

संख्या आखिरी मानी जाती है लेकिन श्रीलालजी महाराज के लिये परार्ध संख्या अंकमाला की मेरू नहीं थी, किन्तु बीच का ही मणका थी, जिस वक्त आप संसार को आश्चर्यचकित करनेवाला राजस्थान के इतिहास से वीर दृष्टांत का वर्णन करने लगते थे उस वक्त सभा जनों में अद्भुतता छा जाती थी, यति मुनिओं की रासाओं से जिस वक्त काव्य दृष्टान्त कहते थे और घोर अंधेरी रात के मध्य भागमें हवेली के ऊपर से हाथी की सूंड़ ऊपर पैर रख कर शंकेत के स्थान में जाने वाली अभिसारिका का शाब्दिक चित्र खींचते थे, उस वक्त श्रोताओं को जितना ही काव्यश्रवण से आनन्द होता था उतना ही व्यभिचार के ऊपर विषाद भी होता था। साधु जीवन की तपश्चर्या-दिखाने वाले वे सनातन धर्म से भिन्न जैन संस्कृति खड़ा करनेवाले और सोने की खान के समान फीलसुफी की गहनता भरी ज्ञान गुफा दिखाने वाले ऐसे संसारिओं में महात्मा गांधी और संन्या-सिओं में पूज्य श्री १००८ श्रीलालजी महाराज ही दिख पड़े। संसारी की अपेक्षा संन्यासी में तप विशेष होना तो एक प्रकार का कुदरत का नियम ही है, जैसा ही देह रंग, वैसे ही इनका यम-संयम रूपी आत्मरंग भी घेरे हुए थे, देह और देही की खाल खींचे सिवाय ये दोनों भिन्न नहीं होते, वैराग्य तो नशों के अन्दर रक्त के समान और हृदय की धकधकी और साधुता तो जीवन का श्वासो-च्छ्वास ही समझता था। बहुतों को तो श्रीलालजी महाराज किसी

अन्य दुनियां के ही हैं ऐसे दिख पड़ते थे, इस संसार में तो— " न त्वत्समोऽस्त्यप्यधिकः कुतोऽन्यः " आपका कोई समान भी नहीं था, अधिक तो कहां से आवे ?..........यह दुनियां तो सदा ही सन्तों की भूखी ही रहती है।

वि० सं० १९६७ का चातुर्मास गुजरात, काठियावाड़ में निष्फल हुआ था, श्रीलालजी महाराज ने श्रावकों में तथा श्रोताओं में जो दया की झरणा जीतेजी वहागये वह झरणा आज भी निर्विच्छिन्न बह रही है।

जैन संस्कार ने ही संसार को वीरत्वहीन किया, इसप्रकार दोष लगाने वाले को अगर उदयपुर के पर्वतों में और जोधपुर-बीकानेर की रणथली में तथा आरावली की भूलभुलैये में सिंह के समान विचरने वाले श्रीलालजी महाराज के दर्शन होजाते तो जरूर ही उनकी भूल लगजाती।

" पेट कटारीरे के पहेरी सन्मुख चाले "
हरिनो माग छे शूरानो, नहिं कायरने काम जोने।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के भक्ति वैराग्यों के इन कीर्तनों में भरी हुई वैराग्य की वीरता कुछ जैन सम्प्रदाय में कम नहीं पड़ती, बुद्ध देव के अथवा महावीर भगवान के अथवा उनकी साधु

साध्वियों के आत्मशौर्य देखने के लिए भी आत्मशौर्य के मार्ग में जाने वाले ही चाहिये। वैराग्य की धीरता देखने के लिए आंख से स्थूल-वस्तु देखने वाले नहीं चाहिए, किन्तु सूक्ष्म पारखी की ही जरूरी है, संसारियों में सत्यस्थ शोधक और वैराग्य पारख आंखें बहुतों की नहीं होती है।

श्रीलालजी महाराज साहब प्रभु नहीं थे, प्रभु के अवतार भी नहीं थे, धर्म संस्थापक भी नहीं थे, पेगम्बर भी नहीं थे, सिर्फ साधु थे, सन्त थे, आचार्य थे, ज्ञान भक्ति, शील, तप, वैराग्य की समृद्धि वाले आत्म समृद्ध धर्मवीर थे, जगत इतिहास के कोक वे नहीं थे, सिर्फ जगत कथाओं में से कुछ एक भाग वे थे, वे कुछ देव नहीं थे, सिर्फ साधु थे, संयम पालते और संयम पलवाते थे, लेकिन पोने तीन लाख की अमदावाद की वस्ती में और १२ लाख करीब बम्बई के मनुष्य समुद्र में तथा सत्तर लाख के लगभग लन्दन शहर के मानव महासागर में कितनेक सच्चे साधु साध्वी हैं? अनुभवी कोई कहेगा?

श्रीलालजी महाराज याने संतरूपी पर्वतों से घिरे हुए एक उच्च शिखर, बचपन में ये डोगरों में खेलते घूमते और कुदरत की गोद में क्रीडा करते हुए कितनी अपूर्व अदृष्ट वस्तु को देखते हुए और शून्य वन में विचरते हुए टेकरी के शिखर सिंहासन के रसिक ये साधु शिरोमणि अद्भुत रस पीकर उछल पड़े और जगत की गोद

में अद्भुत बने ! उस वक्त उन्हें पर्वतों की तरफ से निमन्त्रण मिला कि आप नगर के बाहिर और संसार से बाहिर आवें ! आबू पर्वत से पैदा हुई तथा आरावली से पाली गई बनास नदी के जलप्रवाह में नहाते नहाते बचपन में ही पानी की आवाज आपने सुनी थी कि जैसे हम जलप्रवाह निर्वच्छिन्न बहारही हैं वैसे ही आप दया का प्रवाह समस्त संसार में बहाना, सिद्धार्थकुमार की 'यशोधरा रानी साध्वी दीक्षा लेकर बुद्ध संघ में मिली । इस बात को इतिहास में तथा काव्यों में बाचते हैं, स्वयं सन्यस्त दीक्षा लेने के बाद कुछ दिन बीतगये वि० सं० १९५४ में अपनी पूर्वाश्रम की पत्नी को साध्वी दीक्षा लेने के लिए प्रेरणा, प्रोत्साहन, उद्बोधन देते हुए तथा जय मिलाते हुए श्रीलालजी महाराज साहब को देखने वाले भी कई एक विद्यमान है, श्रीलालजी महाराज साहब की जीवन विजय के प्रसंग का वर्णन उनके जीवन चरित्र लिखने वाले के शब्दों में ही लिखेंगे "पति के पीछे पत्नी" इस शीर्षक छोटासा नवमा प्रकरण अद्भुत रस से भरा हुआ आर्यावर्त के धार्मिक इतिहास में अद्यापि कम नहीं है ।

"क्रम से मेवाड़ मालवा की भूमि को पावन करते हुए पूज्य श्री महाराज रतलाम पधारे, × × रतलाम के श्री संघ ने परम उत्साह, अतिशय भक्ति तथा असीम आनन्द के साथ आपका सत्कार किया । करीब दो हजार मनुष्य आपके सामने गये । इस समय

में आचार्य श्री १००८ उदयसागरजी महाराज ने शरीर के अन्दर व्याधि बढजाने से संथारा पचक लिये थे, यह समाचार फैलते ही सैकड़ों हजारों लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने लगे । टोंक से श्रीयुत नाथूलालजी बंब, उनके सुपुत्र माणकलाल और श्रीमती मान कुंवर बाई श्रीजी की संसारावस्था की धर्मपत्नी ये सब भी आये। हजारों आदमी के बीच में सिंह गर्जना से धर्म घोषणा करने से व श्रीलालजी महाराज साहब के प्रभावशाली व्याख्यान श्रवण करने से मानकुंवर बाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ। पति के पीछे चलकर आत्मोन्नति साधने की उत्कण्ठा प्रबल हो उठी, अर्धङ्गिनी की दावा रखने वाली को ऐसी ही सद्बुद्धि उपजती है, पूज्य श्री के पास मानकुंवर बाई ने प्रतिज्ञा की कि हमें अब एकमास से अधिक संसार में रहना नहीं है, ऐसी प्रतिज्ञा करके मानकुंवारबाई आज्ञा लेने टोंक गई।

सं० १९५४ माघ शुक्ला १० के दिन आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ।

सं० १९५४ फाल्गुण शुक्ला ५ के दिन श्रीमती मानकुंवरबाई रतलाम शहर में दीक्षा ली, इस वक्त पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज भी रतलाम में ही विराजमान थे, एकही तिथि में तीन दीक्षायें थीं।

धार्मिक संसार की उन्नति करने वाला चमत्कार से मनुष्य संसार की जीवनवृत्ति को यह कथा साफतौर पर बोध देने वाली है ?

ई० सं० १८९७ के इतिहास प्रसिद्ध यशस्वी वर्ष में भारत के विद्वान्मुकुट वीरपुत्र तिलक महाराज को देवकी वसुदेव के समान कारागृहवास दिया गया, उसके बाद थोड़े ही मास में यह घटना घटी, उनीसवीं सदी का अस्त और वीसवीं सदी का उदय ई० सं० १८९८ के प्रभात में आर्यावर्त में से यह संसार जीवन चित्र और यह धर्म जीवन चित्र, पाठक ! "भरतखण्ड में अद्भुतता तो इतिहास में ही है, आज कुछ प्रगट होती नहीं, आर्यावर्त की आत्म-लक्ष्मी निकल चुकी है, भारतीय प्रजा तो संस्कृती के नीचे उतर कर बैठी है, ऐसे कहने वाले विदेशी लोगों का ज्ञान सीमा कितनी संकुचित है ? श्रीलालजी महाराज की तथा मानकुंवर बाई की संसार जीवन कथा और धर्म जीवन वार्ता इतिहास प्रसिद्ध किसी भी संस्कृति की शोभा कारक ही है, दाम्पत्य जीवन तथा साधु जीवन संसार के अथवा संस्कृति के दो हृदयों के समान ही हैं अन्य संसार में अथवा संस्कृति में दाम्पत्य जीवन के लिए तथा साधु जीवन के लिए उपदेशों की जरूरी होती है किन्तु आर्य संसार में अथवा आर्य संस्कृति में उपदेश की जरूरी होती नहीं, अतएव और देशों की आत्मा से आर्यावर्त की आत्मा अधिक सजीव है, आज की बीसवीं सदी के भरतखण्ड अर्थात् महात्मा गांधीजी और कस्तूरबा

के तथा श्रीलालजी महाराज साहब व मानकुंवर बाई के तपोमय जीवन के तपोवन ।

राजमुकुट उतार कर भेख लेने के बाद उज्जयिनी में और गाड भ्राट नगरी में पिंगला राणीजी अथवा मैनावती माताजी के समीप भिक्षा के लिए गये हुए भर्तृहरिजी को व गोपिचन्दजी को नाटकीय रंगभूमि पर बहुतों ने देखे होंगे गृहस्थाश्रम के वेश में जो श्रीलालजी महाराज साहब जन्मभूमि में ठहरते नहीं थे और वनमें तथा वैरागिओं में बारंबार भागजाते थे, वही श्रीलालजी महाराज साहब साधुवेश में टोंक नगरी के अन्दर चातुर्मास करके उपदेश देते तथा गोचरी के लिए फिरते थे, इनको वैसे करते हुए देखने वाले कितने ही आज भी मौजूद हैं, आयुष्यवय में तथा दीक्षा वय में छोटे किन्तु गुण भण्डार में बड़े श्रीलालजी महाराज साहब को आचार्य पदपर स्थिर कर के " गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च वयः " ऐसे सर्व शासनों में प्रधान महा सूत्र को जैन शासन ने भी सिद्ध कर रहा है, ऐसा देखने वालों को दिखाया ।

..........श्रीलालजी महाराज वर्तमान काल से अज्ञ सिर्फ शास्त्र सम्पन्न साधु नहीं थे, किन्तु अनुभव विशारद थे, सिर्फ पण्डित ही नहीं थे, किन्तु सन्त थे ।

युरोप में अद्वितीय सुभटनाथ नेपोलियन इटली के अन्दर विजयी के लोह मुकुट अपने हाथ से अपने शिरपर रख लिया था ।

श्रीलालजी महाराज और उनके बाल मित्र गुर्जरमलजी पोरवाड़
सं० १९४४ के मार्ग शीर्ष मास में खुद ही साधु दीक्षा धारण
किये थे, सं० १९६९ के कार्तिक मास में श्रीलालजी महाराज ने
सगे सहोदर कुटुम्ब परिवार मिलकर श्रीलालजी महाराज के लग्न
करने के लिए टोंक से दुनी गांव पधारे थे, श्रीलालजी के धर्मगुरु
तपस्वीजी श्री पन्नालालजी महाराज तथा श्रीगंभीरमलजी महाराज
जैसे कि संसार में पड़ने रूप भूल से निकालने की चितावनी देने
के लिए पहले से ही दूनी में जाविराजे थे, लग्नोत्सव के बाद ३
वर्ष तक श्रीलालजी महाराज साहब की धर्मपत्नी मानकुंवर बाई
पीहर में ही रही, और सं० १९३९ टोंक आई, इस बीच में
श्रीलालजी ने अखण्ड ब्रह्मचर्य यही हमारी जीवन अभिलाषा है
ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा करली थी, श्रीलालजी महाराज के, मानकुंवर
बाई के भाग्य में देखने वैराग्य लिखा था उसको कौन मिटा सकता
था, माता पिता, पत्नी, स्वजन सहोदर इन सबों का प्रयत्न निष्फल
गया, पतिने दीक्षाली, पति गुरुदेव के समीप में ही बाद पत्नी ने
भी दीक्षाली, धर्म दीक्षिता होकर छः वर्षतक सुन्दर संयम पालकर
फिर पति के पहिले ही स्वर्गजाने की आर्य महिलाओं की अभि-
लाषा के अनुसार मानकुंवर बाई ने भी महासौभाग्य प्राप्त किया।

क्या संयम में और क्या संसार में श्रीलालजी महाराज सदा
नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे, और मानकुंवर बाई अखंड सौभाग्यवती

ही रही, संसार की और वैराग्य की सौभाग्य चुंदरी ओढ़कर ही मानकुंवर बाई मृत्यु निद्रा में सोई, पत्नीभावना या पतिभावना से हताश हुए भए अथवा जीवन के विध्वंश से भग्नांश अपने को मानते हुए तथा नैसर्गिक दुर्बल स्वभाव से या इन्द्रियों की आरजु का रुदन से संसार को धुजाने वाले अपने नवीन संसार के कितनेक प्रेमयोगिओं को इन योगी योगिनिओं के दाम्पत्य योगों में से क्या २ सद्बोध लेने लायक नहीं है? आर्य संसार का सफल दाम्पत्य यही है और आर्य सन्यास का सुफल सन्यास इसीको कहते है। इन योगी-योगिन दोनों का यही परम दांपत्य और दोनों के यही परम नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, ईश्वर का शुभाशिर्वाद उतरे इस आर्यदाम्पत्य पर ऊर्मीये युगमें स्थूल पूजा व सुख पूजा का आज का नव जगत में दाम्पत्य जीवन कुं ये गर्यबी ईश्वरी आशीर्वाद की अति आवश्यकता है।

नवीन गुजरात के नवीन स्त्री पुरुष हमसे पूछते हैं कि अगर कल्पना देश निवासी जय-जयन्त मानव जगत में तुम्हारे देखने में हो तो दिखाओ, और तुरंत ही उत्तर दिया है कि "इस संसार में तो दाम्पत्य भावना सफलकरना मुश्किल ही है" यह बात सच्ची है कि कल्पना देश के इन पुण्य निवासिओं को जगज्जीवन दाम्पत्य ब्रह्मचर्य में उतारना मुश्किल है। महात्मा गांधीजी का दाम्पत्य ब्रह्मचर्य आखिर समय का है, लेकिन पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का और

श्री मानकुंवर बाई का नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण पुण्य जीवन की साधु कथाओं से मैं आशा रखता हूं कि इन शंकाशील पूछने वालों का समाधान अवश्य हो जायगा। इस वक्त भी यह आर्य संसार सच्चे साधुओं से शून्य नहीं है आश्चर्य अभी भी मौजूद है Truth is stranger than fiction मानव सर्जीव कल्पना की सच्चाई से असली प्रभु सर्जीत सच्चाई अजब है. प्रभु कल्पना से पर और आकाश गुफाओं का विराट भंडार से भी न मिले वैसी कल्पना मनुष्य से ऐसे नहीं होती। जहां पर अन्धकारों से अन्धकार छिटक रहा है ऐसे आकाश में चमचमाती तेज पुंज तारागण की परम्परा का वाचकवृन्द जरूर देखेही होगें। पूर्वाकाश में मंगल या बुद्ध क्षितिज के पीछे से उगे और आकाशके मध्यभागमें आकर चमकने लगे तथा गगनमंदाकिनी के समीप शनि अथवा गुरूचम-चमाते हो, और फिर वे धीरे २ पश्चिमाकाश में उतर पड़े और स्थिर होजाय; इसप्रकार तेजस्वी शनि की प्रकाशावली भर रात उगती और चमकती हुई आप लोगों ने रात भर में देखी होगी, उनमें मध्य रात्री बीतने पर अमृतनौका सम पूर्व क्षितिज में उगता और धीरे २ तारकवृन्द में जाता हुआ चन्द्रमा दीख पड़ा होगा, हमारे जीवनकाल में भी ऐसा ही हुआ, साधु संगति की हमें बड़ी तीव्र अभिलाषा थी और आज भी थोड़ीसी वह है, चमकती हुई ताराओंमें छोटा बड़ा ग्रह उपग्रह जीवन भर देखें, अपने २ जगत्

के अन्धकारों को थोड़ा बहुत यह सब तारा समान सन्त हटाये हैं और हटावेंगे, लेकिन उन सबों में इस आंख से चन्द्रमा तो सिर्फ एक ही देखा, इस्लामी पंक्ति को तथा पारसी अध्वर्युओं को तो विशेष नहीं देखा है लेकिन सनातनी ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी, थियोसोफिष्ट, मुक्तिफौज, युनिटेरियन, प्रेसबिटेरिअन, इंग्लिशचर्च कथोलिसिझमन साधु संन्यासी धर्मप्रचारक पादरियों का परिचय अधिक किया है, बड़ोदा में सनातनियों का ज्ञानस्तम्भ रूप पंडित पूज्य छोटूमहाराज का भी परिचय है फिलोसफी की कठिनता को सुखबोक करके समझाते हुए नरहरि महाराज का प्रवचनभी सुना है, मोरवी में महामहोपाध्याय संस्कृत शीघ्रकवि शंकरलालजी का भी सत्संग था। जूनागढ में मूलशंकर व्यासजी व्यास बापा के अस्पष्टोत्तर शत परायण का भी दर्शन किया था, अहमदाबाद में प्रेमदर्वाजा पर विराजते हुए सर्यूदासजी के तथा चराचर की चारुता में विचरने वाले जानकीदासजी के दर्शन से विमुख भी नहीं रहे, भजन की धुन में ही रमणेवाले मोहनदासजी के भजन भी भरमन सुने, छोटी २ पुण्य कथा से सत्संग मंडलीको रिझानेवाले और रिझाकर एक कदम ऊपर चढानेवाले जादवजी महाराजको भी बारंबार देखे, नर्मदातीर में गंगानाथ के केशवानन्दजी के साथ भी एकरात हमने बिताई, करनाली के गोबिन्दाश्रमजी और चांदोद के वैद्य स्वामी का भी दर्शन किया है, गंगानाथ के ब्रह्मानंदजी व

वाघोड़िया के दादूरामजी और मालसर के माधवदासजी का दर्शन शौभाग्य नहीं मिला, यह बात नहीं. वीसनगढ के शिवानंदजी पर. मानन्दजी की अश्विनीकुमार समान वैद्यलता को भी जानता हूं; पुष्कर वाले ब्रह्मानन्दजी के भजन व वचन सुना, ९५ वर्षके वयो-वृद्ध लटकती चमड़ी वाले भक्त कवि ऋषिराजजी के भजन भी सुना है, अद्वैती वामदेवजी स्वामी व विशिष्टाद्वैती अनन्त प्रसादजी के प्रवचन और कीर्तन में बैठे हैं, नाटक की रंगभूमि पर भक्तराज नरसिंह मेहताको भी देखा है, इस जीवन में सिन्ध ब्रह्मसमाज के यह दो साधुजन भक्तराज डा० एवेन के बंबई प्रार्थना समाज में एकतारा की धुन में नृत्य भी देखा है, आर्य समाज का 'Intellectual Gymnast' न्यायवाद का महामल्ल आर्य फिलसुफ आत्मानंदजी का सहवास भी किया है, ब्रह्मसमाज के-साधुजन प्रतापचन्द्र मजूमदार और बाबू बिपिनचन्द्र पाल के धार्मिक व्याख्यान सुना है, मुक्ति फौज के सेनापति जनरल बूथ के खिस्ताचार्य मुम्बई के विशप के, डा० फेरवेर्न के डा० फारक व्हार के, डा० सन्डरलैंड के व्याख्यान व धर्म प्रवचन एक २ दफा सुना है, हिमालय की कन्दरा में आसन लगा कर बैठे हुए स्वामीजी श्री श्रद्धानन्दजी को भी देखा है, करीब चार अंगुल चौड़ी सुनहरी किनारीदार साडी पहनी हुई और हाथ पर सोनेरी सांकल की पाकेट वाला ७५ वर्ष की बिधवा मिसेस बेसेन्ट के और आर्य

साधु-वेष में विचरने वाले ब्रूकस के धर्म व्याख्यान में भी गये हैं, शंकराचार्य श्री माधवतीर्थजी, त्रिविक्रमतीर्थजी, श्री शान्त्यानंदजी, और खिलाफत शंकराचार्य श्री भारती कृष्णातीर्थजी से भी हम अपरिचित नहीं है, ऐसे ही सफेद, पीला, भगवावाले को यथामति चीन्हे जाने हैं, नवीन प्राचीन अनेक संप्रदाय के साधु संत को देखे हैं, लेकिन जगत् की अंधेरी महारात्रि को देखने से ये सबही छोटे बडे साधु तारा के सदृश जगमगाते हैं, इस संतरूपी तारकवृंद के मध्य में अमृत के निधान कलानिधि (चन्द्र) समान विचरने वाले पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज को ही देखे।

पाठक, आपकी अति तेजस्वी आंख से अगर साधुता का चन्द्रदेव किसी अन्य को ही देखे हो तो उसमें हमारी मनाई नहीं लेकिन वह साधुता के चन्द्रदेव आप अपने लिये ही देखे हों तो इतना हमारे लिये पर्याप्त है। पाठक! हम आपसे विनय पूर्वक इतना ही चाहता हूं क्योंकि पृथ्वी भर में संसार की रात अंधारी है इसलिए संसार का मार्ग विकट तथा भयानक है।

न्हानालाल दलपतराम कवि

विषयानुक्रमणिका ।

आभार.

यह पुस्तक लागत मात्र से कम कीमत में बेचकर अधिक प्रचार करामे के द्देश्य से नीचे लिखे महानुभावों ने आर्थिक सहायता दी अतः उसका पकार मानता हुं।

० २०००) शेठजी बहादुरमलजी बांठीया–भीनासर
, ५००) झवेरी अमृतलाल राइचंद–पालनपुर
, २५०) झवेरी मोहनलाल रायचंद–पालनपुर.
, १००) झवेरी माणेकचंद जकशी–पालनपुर
. १००) महेताजी बुद्धसिंहजी वेद–बीकानेर.
,, १००) शेठजी जतनमलजी कोठारी–बीकानेर.
.. १००) झवेरी खूबचंदजी इंदरचंदजी–दिल्ली वगेरे.

नीचे के गृहस्थों ने अगाउ से संख्याबन्ध पुस्तकों के ग्राहक बनकर मेरा उत्साह को बढाया है इससे उनका उपकार मानता हुं।

नकलो ५०० श्री उदयपुर श्रीसंघ.

,, ३०० रा. रा. हेमचन्द्र रामजीभाई–भावनगर
,, २७५ रा. रा. देवजीभाई प्रागजी पारख–राजकोट.
,, २५० शेठजी चंदनमलजी मोतीलालजी मुथा–सतारा.
,, २५० शेठजी देवीदास लक्ष्मीचंद घेवरिया–पोरबंदर.
,, २०० शेठजी हस्तीमलजी लक्ष्मीचंदजी –बीकानेर.
,, १०० शेठजी गाढमलजी लोढा–अजमेर.
,, १०१ श्रीमती नानुबाई देशाई–मोरवी.
,, १०० शेठजी श्रीचंदजी अब्बाणी–ब्यावर
,, १०० श्रीसंघ हा. शेठ वरदभाणजी पीतलिया रतलाम.
,, ७५ श्री स्था. जैन मित्र मंडल हा. शेठजी कचराभाई लहेराभाई—अमदावाद वगेरे.
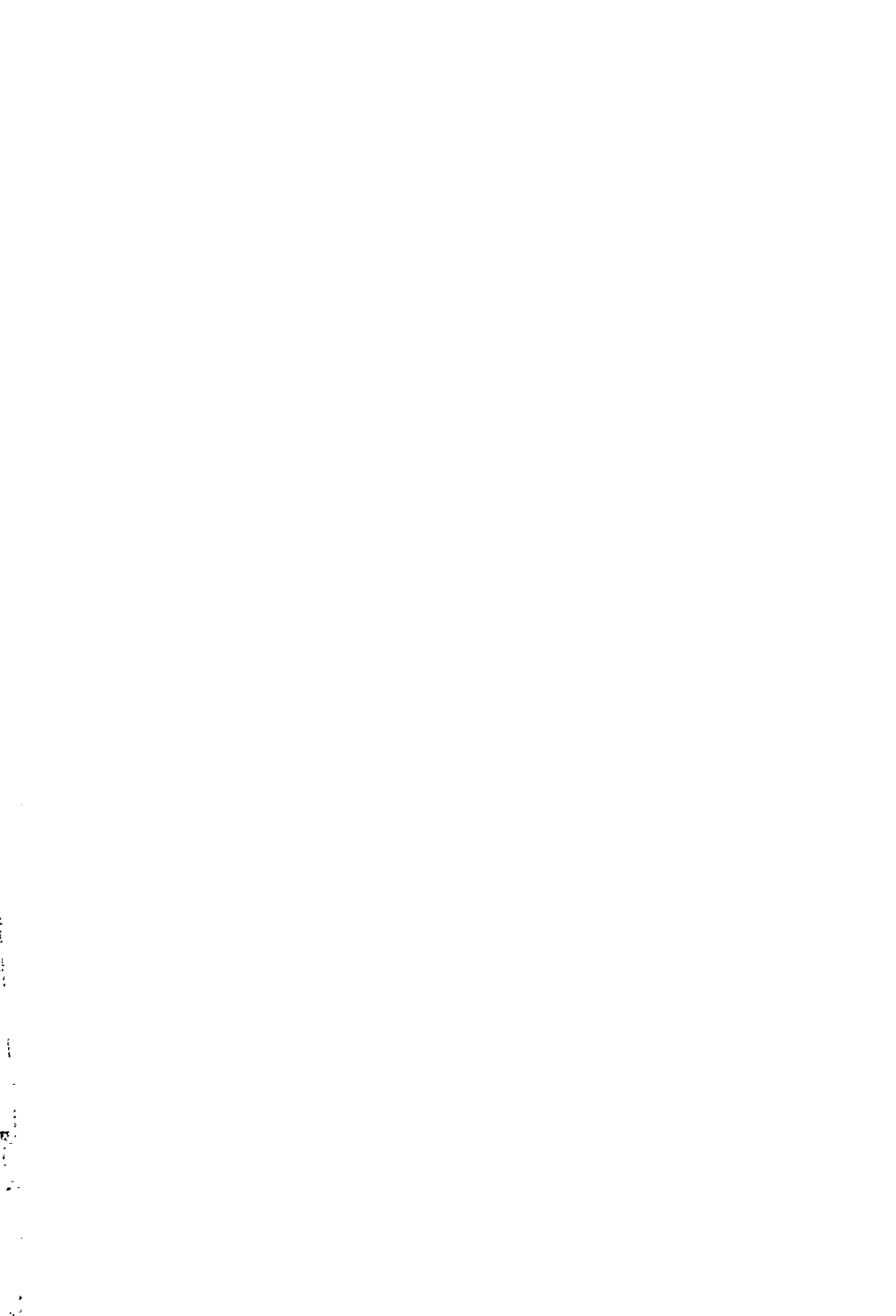
पूज्य प्रभावाष्टकानि ।

लेखक—शतावधानी पंडितरत्न
श्री रत्नचंद्रजी स्वामी ।

नमस्काराष्टकम् ।

वसंततिलकावृत्तम् ।

संशुद्धसंयमधरं सरलस्वभावम्
मोक्षार्थसाधनपरं प्रथितप्रभावम् ॥
तत्वप्रचारपरिशामितदुःखदावम्
श्रीलालजिद्गणिवरं नितरां नमामि ॥ १ ॥

भावार्थः—सम्यक् रीति से शुद्ध संयम के पालने वाले, स्वभाव से ही अत्यन्त सरल, मोक्ष रूपी उत्कृष्ट पुरुषार्थ साधने में सदा निमग्न, देश देशान्तरों में विस्तृत ख्याति-प्रभाव वाले, जैन तत्वों का प्रचार कर अनेक जीवों के दुःख दावानल को बुझाने

वाले आचार्य अवतंस श्रीमत् श्रीलालजी महाराज को मैं मन, वचन और काया की त्रिकरण शुद्धि से नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

दृष्टेः सदा स्रवति यस्य सुधासमूहो
यस्यार्द्रशुद्धहृदयात् करुणाप्रपूरः ॥
यस्यानने वहति सौम्यनदीप्रवाहः
श्रीलालजिन्मुनिवरं तमहं नमामि ॥ २ ॥

भावार्थः—जिनकी दृष्टि में से निरन्तर सुधा स्रवित होता था अर्थात् नेत्रों में अमृत भरा था जिससे हर ओर सुधा दृष्टि से विलोकन होता था; जिनके आर्द्र और पवित्र हृदय से दया का स्रोत बहा करता था जिनके मुख पर सौम्यता—नदी का प्रवाह प्रवाहित रहता था ऐसे श्री श्रीलालजी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

विद्या विवादरहिता विनयेन युक्ता
चित्तं विरक्तमपि सर्वजनस्य रम्यम् ॥
मुद्रा तु यस्य निजशान्तिसमुद्रमग्ना
श्रीलालजिद्व्रतिवरं तमहं नमामि ॥ ३ ॥

भावार्थः—विनय से प्राप्त की हुई जिनकी विद्या विवाद रहित थी, दूसरों को अपमानित करने की वृत्ति से तनिक भी दूषित

न थी, जिनका अंतःकरण वैराग्य रस से पूरित था, परन्तु लूखा न था कि किसीको अरम्य हो, बल्कि सबको मनोहर लगता था; जिनकी मुखमुद्रा आत्मिक शान्ति के समुद्र में मग्न रहती थी; ऐसे विद्वानोंमें श्रेष्ठ श्रीलालजी महाराजको मैं नमस्कार करता हूं॥३॥

श्रीमज्जिनेंद्रमतफुल्लसरोजभृङ्गम्
शास्त्रीयतत्वशुभमौक्तिकराजहंसम् ।
विस्तीर्णकीर्त्तिधवलीकृतदिग्विभागम् ।
श्रीलालजित्सुकृतिनं शिरसा नमामि ॥४॥

भावार्थः—जो सब दर्शन की ओर साम्य भाव रखते हुए भी वीतरागमत—जैन दर्शनरूपी प्रफुल्लित कमल पर भृंग के सदृश लीन थे, शास्त्रीय तत्वरूपी सरस मोती को चुगनेवाले राजहंस थे। जिनकी विस्तीर्ण कीर्ति से दसों ही दिशाएं उज्वल थीं ऐसे सत्कृत्य परायण श्रीलालजी महाराज को मैं सिर झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥४॥

यस्याच्छचुम्बकदृषत्सदृशप्रतापै
राकृष्यतेमतिविशारदराजवर्गः ।
संश्लाघ्यते सुमनसा गुणपुष्पवल्ली
श्रीलालजिद्यतिवरं मनसा नमामि ॥५॥

भावार्थः—स्वच्छ और बृहत् लोह चुंबक में अधिक से अधिक भारी लोहे को भी खींचने की शक्ति रहती है इसी तरह

जिनके प्रताप-प्रभाव में उच्च पद प्राप्त मनुष्यों के खींचने की शक्ति थी इसी प्रताप द्वारा असाधारण विचारशील विद्वान राजा महाराजा जिनकी ओर झुकते थे इतनाही नहीं परंतु वे उनके गुण-पुष्प की लतिका की महक से प्रसन्न हो मुक्तकंठ द्वारा श्लाघा—प्रशंसा करते थे ऐसे यतिओंमें प्रधान श्रीलालजी महाराज को मैं अंतःकरण पूर्वक नमस्कार करता हूं ॥५॥

> दंभोज्झितं निरभिमानिनमात्मलक्ष्यं
> कंदर्पसर्पदशनोत्खनने समर्थम् ।
> शांतं सदैव करुणावरुणालयं तं
> श्रीलालजिद्गणिवरं प्रणमामि भक्त्या ॥६॥

भावार्थः—दंभ-मिथ्याडंबर जिन्हें लेशमात्र भी पसंद न था, आचार्य पदप्राप्त एवम् प्रतिष्ठाप्राप्त सरदारों के पूजनीय होते भी जिन्हें अभिमान छुआ भी न था परंतु सिर्फ आत्माही की ओर जिनका लक्ष्य था, कंदर्प-कामदेवरूपी विषारी सर्प की डाढें उखाड़ने में जो विजयी हुए थे, जिनके चहुं ओर शांति स्थापित थी, दया के तो जो सागर थे उन आचार्य शिरोमणि श्रीलालजी महाराज को मैं आंतरिक भक्ति से नमस्कार करता हूं ॥६॥

> पाषाणतुल्यहृदया अपिकेचनार्या
> नीताः स्वधर्मपदवी कुशलेन येन ।

दृष्टांतयुक्तिरसगर्भित बोधशैल्या
श्रीलालजिद्गणिवरं गुरुकल्पमीडे ॥७॥

भावार्थः—कितनेही आर्यभूमि और आर्यकुल में उत्पन्न होते भी धर्म संस्कार हीन होने से पत्थर से हृदय वाले बन गए थे उनको भी जिन कुशल पुरुष ने दृष्टांत और युक्ति पूर्वक रस गर्भित उपदेश देने की रीति से उपदेश दे समझा निजधर्म की राह पर लगाये, धर्म परायण बनाये, ऐसे आचार्य शिरोमणि बृहस्पति समान श्रीलालजी महाराज की मैं मुक कंठ से स्तुति करता हूं ॥७॥

रोगेण पीडिततनावपि यस्तपस्या
मुग्रां समाचरितवान्मनसोजसा च ॥
मान्द्यं महत्तपसि नापि समाश्रयद्यो
बोधादिनित्यनियमे तमहं नमामि ॥ ८ ॥

भावार्थ :— पैरों में बात रोग और देहमें दूसरे त्रासदायक अनेक रोग अधिक समय उत्पन्न हो जाते थे तोभी वे दुःख और शरीर निर्बलता को न गिनते, सिर्फ मनोबल द्वारा चार २ आठ २ उपवास एकदम कर लेते थे जिसमें भी तुर्रा यह था कि ऐसी बड़ी तपस्या में भी हररोज व्याख्यानादि नित्य नियमों में तनिक भी मंदता – शिथिलता न होती थी ऐसे दृढ़ मनोबल वाले समर्थ महात्मा श्री श्रीलालजी महाराज को मैं बार २ नमस्कार करता हूं।

प्रतापसौभाग्य-वर्णनाष्टकम् ।

वसन्ततिलका वृत्तम् ।

सद्यस्त्वमेव पृथिवीप्रवरप्रदीपो
हर्तान्धकारपटलस्य हृदि स्थितस्य ॥
मन्येऽपरः प्रकटितस्तरणिर्नवीनो ।
धृत्वा तनुं शुभतरां क्षितिपादचारी ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मुनिवर ! तीर्थंकर केवली प्रभृतिकी अनुपस्थितिमें वर्तमान समयमें जैन समाजके हृदयके तमको नाश करनेवाले आप स्वतः ही पृथ्वी के श्रेष्ठ सूर्य (दीपक) हैं । मेरी मान्यता है कि मानुषिक देह धारण कर, आप पृथ्वी पर पादविहारी विलक्षण नवीन सूर्य प्रकट हुए हैं । आकाशमें भ्रमण करनेवाला एक सूर्य और पृथ्वी पर विचरने वाले आप दूसरे सूर्य हैं ॥ १ ॥

सूर्योदयस्य वैशिष्ठ्यम् ।

बाह्यं समस्ततिमिरं प्रतिहन्ति भानु
र्नाभ्यन्तरां हृदयभूमिनतांनितान्तम् ॥
त्वं तु प्रबोधकजिनोक्तवचोवितानै
जाड्यं द्वयं हरसि भूमिरवे जनानाम् ॥ २ ॥

भावार्थः—आकाशीय सूर्य तो बाह्य स्थूलान्धकार का नाश करता है परन्तु मनुष्यों के हृदयभूमि पर विस्तृत अज्ञानांधकार को नहीं हटा सका, परन्तु हे भौमिकसूर्य ! पादविहारी सूर्यरूप मुनिवर ! आप तो तात्विक शिक्षा देने वाले वीतराग के वचन द्वारा जनसमाजकी बाह्य और आंतरिक दोनों तरहकी जड़ता हरलेते हो यह विशेषता है ॥ २ ॥

पुनर्वैशिष्ट्यम्

साम्राज्यमस्ति दिवसे दिवसेश्वरस्य
सायं पुनर्भुवि तदस्तमुपैति नित्यम् ।
वृद्धिङ्गतो निशिदिनं तरुणस्त्वदीयो
नव्यः प्रताप इह भाति विलक्षणो वै ॥ ३ ॥

भावार्थ :—आकाश विहारी सूर्य की महिमा सिर्फ दिन को ही होती है । प्रातः काल उदय होता है । मध्यान्ह में तरुण रहता है परंतु सध्या होते ही सूर्य का साम्राज्य विलीन हो इस पृथ्वी पर से अदृश्य हो जाता है परंतु आपका प्रताप तो रातदिन उच्च शिखर पर चढ़ता हुआ सदैव युवानहीं युवान रह कर प्रतिक्षण सुकीर्ति की चढ़ती कला में जाता प्रतीत होता है। सूर्य के साम्राज्यसे आपके साम्राज्य में यही विलक्षणता है ॥ ३ ॥

विजय लक्ष्मीः

संघाटके मुनिषु सत्सु महत्सु चान्ये
ष्वाचार्यपूज्यपदवीपदमाश्रिता ते ॥
मन्ये प्रतापतपनं ह्युदितं तवैव
दृष्ट्वा प्रसक्तिमभजत्त्वयि सा जयश्रीः ॥ ४ ॥

भावार्थः—स्वर्गीय पूज्य श्री—चौथमलजी महाराज के अवसान समय पर आचार्य और पूज्य पदवी का प्रश्न उपस्थित हुआ उस समय आपकी सम्प्रदाय में आपसे अधिक वयोवृद्ध और संयम में बड़े मुनिवर विद्यमान थे तोभी आचार्य पूज्य पदवी आपके चरण को ही वरी, इसका कारण मुझे तो यह प्रतीत होता है कि आपका प्रताप-सूर्य प्रकट होगया था उसे देखकर ही विजय लक्ष्मी आप पर मोहित होगई ॥ ४ ॥

साम्राज्यतारुण्यप्रदर्शनम् ।

वैज्ञानिकाः पदविभूषितपण्डिताश्च
नव्याः पुरातनजनाः क्षितिपा महान्तः ॥
सन्मानयन्ति दृढभक्तिपुरःसरं त्वां
मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ५ ॥

भावार्थः—नई रोशनी वाले विद्वान् और आचार्य तीर्थादि पदवी से मंडित पंडित नये जमाने के सुसंस्कार वाले युवा और प्राचीन पद्धति को मान देने वाले वृद्ध एवम् प्रतिष्ठित नरेश एक सी समानता से दृढ़भक्ति पूर्वक आपका सम्मान करते हैं और श्रद्धापूर्वक आपकी सेवा शुश्रूषा बजाते हैं यही आपसे भौमिक दिनकर के मध्याह्न कालकी महिमा है ॥ ५ ॥

सौराष्ट्रिका निजमताग्रहिणोऽपि सन्तो
भूत्वा तवाङ्घ्रिकजचुम्बनचञ्चरीकाः ॥
त्वां भेजिरेऽतिशयिनं प्रबलप्रतापं
मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ६ ॥

भावार्थः—जब आपका काठियावाड़ में पदार्पण हुआ तब भिन्न २ सम्प्रदाय वाले साधु साध्वियों में से कई तो एक वक्त के समागम से ही आपकी विद्वत्ता और आपके चारित्र्य का पूर्ण मान करने लगे परन्तु जो कोई मताग्रही थे वे भी आपके थोड़ेसे सह-वास और परिचय के पश्चात् मताग्रह त्याग आचार्य के अतिशय सहित और प्रौढ़ प्रबल प्रताप वाले आपके चरण कमल को चुम्बन करने में भृंग से बन आपकी सेवा में प्रस्तुत होगए, यह भी पृथ्वी विहारी सूर्यरूप आपके मध्याह्न काल की महिमा का ही प्रताप है ॥ ६ ॥

यत्रागमस्तव महत्स्वपरेषु तत्र
विद्वत्सु सत्स्वपि च तावकमेव बोधम् ॥
श्रोतुं रता मुनिजना गृहिणश्च सर्वे
मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ७ ॥

भावार्थः—आपके प्रतापकी वास्तविक खूबी तो यह थी कि इस भूमि—काठियावाड़ी भूमि में जहां २ आपने पदार्पण किया उस ग्राम में आपसे दीक्षा में और उम्र में बड़े एवम् विद्वान् मुनि विराजमान थे, परन्तु कोई व्याख्यान न देते सिर्फ आपके सामने एक ही सभा में सब साधु, श्रावक और अन्य मतावलम्बी लोग आपके व्याख्यान सुनने को उत्सुक रहते और आपके पास से ही व्याख्यान दिलाते थे और किसी मुनिके दिलमें लेशमात्र भी यह विचार नहीं आता था कि हमारे भक्त हमसे आपको अधिक मान क्यों देते हैं? यह भी क्षितिविहारी सुसूर्य रूप आपके मध्याह्न काल की महिमा ही है ॥ ७ ॥

येनैकदापि तव वाक्श्रवणीकृता वा
दृष्टं सकृच्चव सुभव्यमुखारविन्दम् ॥
आजीवनं मनसि तस्य छविस्त्वदीया
लग्ना विभाति महिमैष तवैव भूतेः ॥ ८ ॥

भावार्थः---जिस मनुष्य ने एक समय भी आपके व्याख्यान सुने हैं या आपके रमणीक मुखारविंद के दर्शन किये हैं उस मनुष्य के मनरूपी सेट पर आपके चेहरे का मानो भव्य फोटो खींच गया है और वह जीवन तक न बिगड़ते हमेशा ज्यों का त्यों प्रस्तुत रहता है। लेखक को अनुभव है कि एक समय परिचित हुआ मनुष्य आपको पुनः २ याद करता है और दर्शन करने को आतुर रहता है यह सब आपकी विभूति--चारित्रसम्पत्ति की अलौकिक महिमा है ॥ ८ ॥

अस्मदीयरत्नम् ।

विरहाष्टकम्

उपजाति वृत्तम् ॥

चिंतामणिर्यत्तुलनां न धत्ते
यन्मूल्यकं पार्श्वमणिर्न दत्ते ॥
एतादृशं जङ्गमरत्नमेकं
प्रसिद्धिमाप्तं मरुसाधुवर्गे ॥ १ ॥

भावार्थः—चिंतामणि रत्न जिसकी तुलना नहीं कर सक्ता और पार्श्वमणिभी मूल्य में जिसकी समानता नहीं कर सक्ता ऐसा जंगम अर्थात् चलता फिरता रत्न हमारे मारवाड़ की ओरके साधु समुदाय में से प्रसिद्ध प्रख्यात हुआ ॥ १ ॥

श्रीलालजित्तस्य च नामधेयं
दृष्टं मया प्राक् पुरवक्कनेरे ॥
तद्दर्शनं तत्र च पत्रमात्रं
लब्धं महाभाग्यवशेन नूनम् ॥ २ ॥

भावार्थः—उन नररत्न-उन मुनिरत्न का नाम अब किसी से गुप्त नहीं है तौ भी कहना होगा कि उनका नाम सिरेलालजी या श्रीलालजित् था। इस लेखकको सिर्फ उनके नामसे ही परिचय नहीं है, परन्तु संवत् १९६९ के प्रथम आषाढ मासमें वांकानेर शहर में साक्षात् दर्शनसे भी परिचय हुआ था जोकि उनका दर्शन सिर्फ १ पक्ष भर ही वहां पर मिला था उतने समय की दर्शनकी प्राप्ति भी महाभाग्य के उदयका फल है ॥ २ ॥

तृप्तिर्न या वर्षशतेन जन्या
तत्रास्ति पक्षः किमलं प्रमाणम् ।
तथाप्यभून्मेऽत्रभविष्यदाशा
हताधुना हा विगता वृथा सा ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिनके दर्शन सौ वर्ष तक होते रहें तो भी तृप्ति न हो, तो विचारा एक पक्ष किस गिनतीमें है ? एक पक्ष साथ रहने से दोनों के मनमें सम्पूर्ण चातुर्मास साथ रहने की प्रबल उत्कंठा हुई थी, परन्तु एकका मोरबी और दूसरेका भोराजी चातुर्मास नियत होजाने से अनाशा हुई, तो भी चातुर्मास में हेर फेर करने का प्रयत्न जारी रहा परन्तु संयोग न होने से परिणाम निराशा में परिणित हुआ । चातुर्मास पश्चात् संगम होने की आशा की थी परंतु चातुर्मास के पूर्ण होते ही अकस्मात् मार-

वाड़ की ओर के विहार से वह आशा विलुप्त प्रायः हुई थी परन्तु हा ! खेद तो यह है कि अंतिम दुःखदाई समाचार से उस आशा को बड़ा भारी धक्का लगा । अरे ! अब तो वह संभावना बिल्कुलही निष्फल होगई ॥ ३ ॥

विलुप्तं रत्नम् ॥

वंशस्थवृत्तम् ॥

हा हा ! ! हृतं केन समाजभूषणम्
किंचिन्न यत्रास्ति विकारदूषणम् ॥
अलंकृता येन विराजते मही
रत्नं विलुप्तं तदिहोत्तमोत्तमम् ॥ ४ ॥

भावार्थ —: अरेरे ! जिनकी प्रकृति में कोई विकार नहीं, जिनके चारित्र में कुछ भी दूषण नहीं, ऐसा हमारा एक जंगम रत्न कि जो जैन समाज का देदीप्यमान भूषण था उसे किसने चुरा लिया ? अरे ! जिनसे सम्पूर्ण विश्व अलंकृत था ऐसा हमारा उत्तमोत्तम रत्न इस पृथ्वी पर से कहां गुम होगया ? ॥ ४ ॥

उपजातिवृत्तम्

आन्वार्यभूसावलोकयामः
स्थले स्थले रत्नमिदं महार्घम् ॥

न दृश्यते क्वापि तदस्मदीयं
न चापि तत्तुल्यमथापरं हा ! ॥ ५ ॥

भावार्थः--आर्यावर्त के देश देश ग्राम २ और स्थान २ घूम २ कर इस अमूल्य रत्न की प्राप्ति के लिये देखते फिरते हैं, छानबीन कर ढूंढते हैं परंतु वह अमूल्य जवाहिर कहीं भी नहीं दिखता। खेद है कि उसकी समानता वाला रत्न भी कहीं दृष्टि गत नहीं होता ॥ ५ ॥

कस्मात्तत्तुल्यमपरं न ?।

अलौकिकं सुन्दरमद्वितीय
मनूनकं कान्ततरं विशुद्धम् ॥
अमन्दमानन्दपदं विपद्घ्नं
पुण्यौघलभ्यं हि तदस्मदीयम् ॥ ६ ॥

भावार्थः--वह हमारा जवाहिर लौकिक नहीं परंतु लोकोत्तर था। रमणीय से रमणीय और बिना जोड़ी का अर्थात् जिसकी समानता कोई न कर सके ऐसा एकही था-जिसमें कुछ भी न्यूनता न थी। अतिशय मनोहर और दूषण रहित विशुद्ध, था, जिसकी ज्योति कभी मंद न होती थी सबको आनंददाई था, विपत्तिविध्वंसक यह रत्न सचमुच समाजके पुण्योदय से ही यहां प्राप्त हुआ था ॥६॥

स्थातुं न योग्यः किमु मर्त्यलोकः
स्वर्गेऽथवावश्यकतास्य जाता ॥
क्लेशः स्वपक्षेऽरुचिकारणं किं
कस्माद्गतं स्वर्वसुधां विहाय ! ॥ ७ ॥

भावार्थः—क्या उस जवाहिर के रहने के लिये यह मृत्युलोक-मनुष्य लोक उचित न था ? या स्वर्गलोक में उसकी विशेष आवश्यकता होने से कोई उसे वहां ले गया ? या वर्तमान प्रचलित सांप्रदायिक क्लेश के कारण यहां रहने से उसे अरुचि हुई ? किस लिये वह इस पृथ्वी पर कहीं न रहते स्वर्गलोक में चला गया ? ॥७॥

हृतं न केनापि वृथाऽत्र शोधः
प्राप्तुं न शक्यं पृथिवीतलेऽस्मिन् ॥
गतं स्वयं तत्खलु दिव्यलोकं
प्रयोजनं किं तदहं न जाने ॥८॥

भावार्थः—हे मानवो ! तुम्हारा वह अमूल्य रत्न इस पृथ्वी पर किसीने नहीं चुराया, इसलिये उसे ढूंढना वृथा-निष्फल है, इस पृथ्वी की समभूमि पर चाहे जितनी तलाश करो तोभी वह कहीं न मिलेगा, वह स्वतः दिव्यलोक-स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गया है । "किस लिये" यह प्रश्न करोगे तो मैं इस का प्रत्युत्तर देने में असमर्थ हूं कारण मैं इस विषय से विशेष विज्ञ नहीं हूं ॥८॥

प्राचीन इतिहास और गुर्वावली ।

ज्ञानियों का कथन है कि मनुष्यत्व ही ईश्वरता प्राप्तिका मूल साधन है । क्योंकि वह ज्ञानी एवम् विचारवान है इसलिये सारासार, सत्यासत्य, धर्माधर्म और आत्मअनात्म तत्वों का निर्णय कर सक्ता है उन्नति के आकाशमें मनुष्य कितनी ऊंचाई तक प्रयाण कर सक्ता है । यह कोई नहीं बता सक्ता, स्वर्ग और मोक्ष के द्वार खोलने का सामर्थ्य मनुष्य ही रखता है, प्रभु के गुण वह अपनी आत्मामें प्रकाश कर प्रभुता प्राप्त कर सक्ता है । समस्त बंधनोंसे मुक्त होना एवम् सच्ची और सर्वकाल व्यापिनी स्वतंत्रता प्राप्त करना, सर्व-दुःखों से मुक्त हो शाश्वत शांति प्राप्त करना यही उन्नतिका शिरो-बिन्दु है इसीको परमपद—परमात्मपद या मोक्ष कहते हैं, इस पद को प्राप्त करने की सामर्थ्य मनुष्य के सिवाय अन्य प्राणी में नहीं होती ।

परन्तु जबतक मनुष्य जन्मका उद्देश्य न समझ सके, स्व स्वरूप का भान न होसके, जगत् जिस रूपमें है उसी रूपमें उसे न पहि-चान सके और मोक्षका यथार्थ मार्ग न ज्ञात कर सके तबतक म-नुष्य जन्म सार्थक नहीं । इसलिए प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि मोक्ष मार्ग ग्रहण कर उस मार्ग पर आगे बढ़े जिससे जन्म, जरा,

मृत्यु और रोग शोकादि दुःखोंकी निवृत्ति हो। परन्तु जिस तरह
किसी बन में भटकते हुए मनुष्य को राह दिखाकर बाहर निका-
लने वाले पथदर्शक की आवश्यकता है इसी तरह इस सांसारिक
विकट बन से पार हो मोक्ष नगर पहुंचाने के लिये भी किसी
सन्मार्गदर्शक पथिक की आवश्यकता है। इसलिये जो महान्
पुरुष इसके ज्ञाता हैं उनका अवलंबन करना उनकी आज्ञा मानना
और उनका अनुकरण करना सर्वोच्च उपाय है।

ऐसे महात्मा प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं, अनादि का
से ऐसी विश्व व्यवस्था है कि जब २ इन आत्माओंकी आवश्यकता
होती है तब २ उनका प्रादुर्भाव होता है, ये सांसारिक क्षुद्र
वासनाएँ त्याग संसार को अपने जन्म समय की स्थिति से
अधिक उन्नतर स्थिति में लाने का निष्काम वृत्ति से प्रयत्न कर
हैं इनका समस्त ऐश्वर्य परोपकारार्थ लगता है। संसार के
कल्याणार्थ अपनी आत्मा समर्पण करते भी वे सदा तत्पर रहते
हैं और कर्तव्य पालन करते हुए अपने प्राणों की परवाह भी नहीं
करते, उनके आचार विचार, नीति रीति, जीवन के छोटे बड़े
समस्त काम ध्रुव की तरह संसार सागर में अपनी जीवननौका
चलाने के लिये दिशा दिखाने को अटल बने रहते हैं।

...त्माओं में भी जो रागद्वेष से सर्वथा मुक्त हैं

आत्मा के मूल गुणों में बाधक मोह ममत्व के परदे चीर डालते हैं, ज्ञानावरणीयादि चार घन घाती कर्म को समूल नष्ट कर आत्मा अन्तर्गत स्थित अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्य (शक्ति) उपार्जन करते हैं । परमात्मा के नाम से सम्बोधित होते हैं । वे राग द्वेष को जीतने वाले होने से जिन और साधु साध्वी श्रावक श्राविका चार तीर्थ के स्थापक होने से तीर्थंकर कहे जाते हैं ।

अनंत करुणा के सागर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जिनदेव जगत् के उद्धार के निमित्त जो मार्ग दर्शाते हैं । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार जो २ नियम योजित करते हैं और जो २ आज्ञाएं फरमाते हैं उन्हें धर्म अथवा शासन ऐसी संज्ञा देते हैं । ऐसे जिनेश्वर देव पंच महा विदेह क्षेत्र में सर्वदा विद्यमान हैं, परंतु भरत और इरवत क्षेत्र में नहीं । यहां जो कालचक्र घूमा ही करता है जैसे समुद्र का पानी छः घंटों तक ऊंचा चढ़ता और छः घंटों तक नीचे उतरता है सूर्य छः माह उत्तर में और छः माह दक्षिण में प्रयाण किया करता है, इसी अनुसार नियमित गति से फिरते कालचक्र में भी धर्म, अधर्म और सुख, दुःख फिरा करते हैं, न्यूनाधिक हुआ करते हैं । वीस कोडाकोड़ी सागरोपम के एक कालचक्र के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दो विभाग हैं, प्रत्येक के छः आरे कल्पित किये हैं, इन छः आराओं में से

तीसरे और चौथे आराओं में तीर्थंकरों का अस्तित्व रहता है यों चढ़ती उत्सर्पिणी काल में २४ और उतरती अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर होते हैं। प्रत्येक काल चक्र में दो चौबीसी होती हैं ऐसे अनंत कालचक्र फिर गए और अनंत तीर्थंकर हो गए हैं।

अपने इस भरत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे में ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक २४ तीर्थंकर हुए। इनमें चरम तीर्थंकर श्री महावीर प्रभुका वर्तमान में शासन प्रचलित है।

श्री महावीर स्वामी का जन्म आज से २५२० वर्ष पूर्व (ई० सन् ५९९ वर्ष पूर्व) पूर्वस्थित विहार के कुंडपुर नगर के※ क्षत्रिय कुल भूषण, ज्ञातवंशी, काश्यप गोत्री सिद्धार्थ राजा के यहां हुआ था। उनकी माता का नाम † त्रिशला देवी था। प्रभु गर्भ में थे तबही से राजा सिद्धार्थ के राज्य विस्तार में तथा धन धान्यादि

※ सब तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में ही जन्म लेते हैं और राज्य वैभव त्याग जगदुद्धार करने के लिये संयम लेते हैं। † त्रिशलादेवी सिंधु देश के महाराजा चेटक (चेड़ा) की ज्येष्ठ पुत्री थी। उनका दूसरा नाम प्रियकारिणी था। उनकी बहिन चेलणा मगध देश के आधिपति राजगृही नगरी के महाराजा श्रेणिक जो भारतीय इतिहास में बिम्बसार के नाम से प्रसिद्ध है उनकी पटरानी थी।

के भंडार में अति अभिवृद्धि हुई इससे पुत्र का नाम, जन्म होने पर वर्द्धमान दिया गया था। पश्चात् अपने अद्भुत पराक्रम के कारण महावीर के नाम से विश्व में विख्यात हुए। अनंत पुण्योदय से तीर्थंकर पद प्राप्त होता है पुण्य अर्थात् शुभ कर्म के पुद्गलों में शुभ द्रव्यों को आकर्षित करने का अतुल सामर्थ्य है जिससे तीर्थंकरों की शरीर सम्पदा, वाणीविभव, और मनोबल आदि असाधारण होते हैं।

यौवनावस्था प्राप्त होने पर यशोमती नाम की एक सद्गुणवती और स्वरूपवाली राजकन्या के साथ महावीर का विवाह किया गया, जिससे प्रियदर्शना नामक एक पुत्री हुई। संसार में रहते भी श्री महावीर का चित्त संसार से जलकमलवत् विरक्त था, तत्त्व चिन्तन में जिनके समय का सद्व्यय होता था। दुःखी दुनिया के दुःख दूर करने, दुनिया में शांति प्रसारित करने, यज्ञयागादि में धर्म निमित्त होते असंख्य पशुओं के वध को रोक सर्वत्र अहिंसा धर्म की विजयपताका फहराने, विषय कषायादि की ज्वाला से जलते जीवों को बचाने और प्राणीमात्र को हितकर हो ऐसा कर्तव्य मार्ग जगत् को दिखाने के लिये गृहवास त्याग संयम लेने की बाल्यकाल से ही उनकी प्रबल अभिलाषा थी। तीस वर्ष की भर युवावस्था में उन्होंने राज्य- वैभव, विषय सुख और कुटुम्ब परिवार का परित्याग कर दीक्षा ली। घोर तपश्चर्या कर, कर्म जला, केवलज्ञान

प्राप्त करने को उद्यत हुए। राजमहल में रहने वाले सुकुमार राजपूत सिंह, व्याघ्रादि, हिंसक पशुओं के निवास स्थान भयानक अरण्य में अनेक उपसर्ग सहन करते विचरने लगे। अन्य परिग्रहों का परित्याग करने के साथ २ ही देह ममत्व रूप परिग्रह का भी उन्होंने सर्वथा परित्याग किया था इसलिये शिशिर ऋतु की कलकलती थंड में उत्तर हिन्द में जहां हिम पड़ता और शीत वायु बहती थी वहां वे वस्त्र रहित समस्त रात्रि ध्यानावस्था में बिताते थे। प्रभु जब कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित रहते थे तब कई समय ग्वाल आदि निर्दयता से उन्हें पीटते थे। एक समय एक निर्दय ग्वालने प्रभु के कान में खीले ठोक दिये, दूसरे ग्वाल ने उनके दोनों पैर के मध्य की पोलाई में अग्नि जला उस पर खीर पकाई, तो भी प्रभु ध्यान से विचलित नहीं हुए। इसके सिवाय चंडकौशिक नाग, शूलपाणियक्ष संगम देवता प्रभृति की ओर से प्राप्त परिसह तथा अनार्य देश के विहार समय अनार्य लोगों के किये उपसर्गों का वर्णन सुनकर रोमांच हो आता है।

परंतु क्षमा के सागर श्री महावीर स्वामी ऐसे विषम समय को भी कर्मक्षय का कारण समझ आनंदपूर्वक सहन कर लेते थे उपसर्ग करने वालों का भी श्रेय चाहते अथवा श्रेय मार्ग की ओ उन्हें लगा देते थे। गोशालाने उनपर तेजोलेश्या छोड़ी तोभी प्र

ने उसे उपदेश दे स्वर्ग पहुंचाया । चंडकौशिक सर्प ने उन्हें काटा परंतु उसे जातिस्मरण ज्ञान करा स्वर्ग का अधिकारी बनाया।

प्रभु की घोर तपश्चर्या का वर्णन भी आश्चर्यकारी है कई समय तो वे चार २ छः छः माह तक निराहारी रह कायोत्सर्ग ध्यान धरते थे। शरीर पर से मूर्च्छाभाव त्याग, इच्छा का निरोध कर इन्द्रियों की विषयासक्ति हटा आत्मभाव में अटल रहते। बारह वर्ष और ६॥ माह व्यतीत हुए, छद्मावस्था के ४५१५ दिनों में उन्होंने सिर्फ ३५० दिन आहार किया था।

इस तरह तप्त प्रचंड दावानल द्वारा कर्म काष्ट का दहन कर तथा शुक्ल ध्यान ध्याते चार घाती कर्मों का सर्वथा क्षय हुआ और आदि कालसे गुप्त रहीहुई केवल ज्योति उदय हुई जिससे प्रभु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए—लोकालोक को हस्तामलकवत् देखने लगे, आज तक प्रभु प्रायः मौन थे, परन्तु अब सम्पूर्ण ज्ञानी होजाने से करुणा-सिन्धु भगवानने जगत् के उद्धारार्थ मोक्ष मार्ग की प्ररूपना की। पैंतीस गुणयुक्त प्रभुकी अनुपम वाणी प्राणी मात्र को हितकारी, अनंतानंत भाव भेदों से पूर्ण, तथा भाव समुद्र से तिराने के लिये नौका समान थी। इस वाणी द्वारा प्रभुने मोक्ष प्राप्ति के चार साधन बताये—ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप।

ज्ञानः— ज्ञानद्वारा जीवाजीवादि वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप

समझा जाता है, स्व और पर द्रव्यकी पहिचान होती है। परवस्तु अर्थात् पुद्गल से ममत्व दूर हो, आत्मभावमें स्थिरता होती है। आत्माके अनंत ज्ञान और अनंत सामर्थ्य का भान होता है अनादि कालसे अविनाशी आत्मा विनाशक पौद्गलिक दशा में अहं ममत्व धारण कर राग द्वेष के बंधनसे बंधा हुआ है और उससे ही चतुर्गति संसार के अनंत दुःख सहन करने पडते हैं। उसकी सत्यता प्रमाणित होती है, देहादिक परवस्तु में ममत्व न रहने से दुःख हो नहीं सका, शाश्वत सुख का अखूट भंडार तो अपनी आत्मा ही है ऐसा उसे साक्षात्कार होता है सब आत्मा समान हैं ऐसा भान होते ही सर्वात्म पर समदृष्टि होती है सब जीवों को अपने समान समझने लगता है जिससे वैर विरोध और लोभ क्रोधादि दुर्गुण एवम् तज्जन्य दुःखों का सदंतर अभाव हो जाता है। जगत् के छोटे बड़े समस्त प्राणीयों के सुख की ही सतत् स्पृहा रहती है, सुख सबको सर्वदा प्रिय होता है, ऐसा समझकर वह सबको सुखी करने के लिये प्रेरित होता है, इससे ज्ञानी पुरुष मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावनाएं भी मोक्ष की कुञ्जी प्राप्त कर लेते हैं; मैं अजर अमर अविनाशी हूं देह के नाश से मेरा नाश नहीं, ऐसा समझ कर वह भय का नाम निशान मिटा देता है और मृत्यु से नहीं डरता है। जो मृत्यु से नहीं डरता वह क्या नहीं कर सका? अर्थात् सब सिद्धियां प्राप्त कर सका है इसलिये ज्ञानको मोक्षकी प्रथम पंक्ति का स्थान दे प्रभु फरमा रहे

हैं कि "जे आया से विन्नाया जे विन्नाया से आया, जेण विजाणइ से आया" अर्थात जो आत्मा है वही ज्ञान है और जो ज्ञान है वही आत्मा है और जिससे बोध हो सका है वही आत्मा है। श्री आचारांग-सूत्र में प्रभु ने ज्ञान का अपार महत्त्व दिखाया है, ज्ञान से ही वीतरागता प्राप्त होती है और वीतराग दशाही सब सुखोंका आश्रय स्थान है।

दर्शन—ज्ञान द्वारा जो सूझा है उस पर श्रद्धा करना दर्शन कहलाता है। कई मनुष्य शास्त्र श्रवण या सद्गुरु के उपदेश से धर्मका स्वरूप समझते हैं परन्तु जबतक उसपर अटल विश्वास न हो तबतक उसी अनुसार व्यवहार होना अशक्य है, इसलिये सम्यग्दर्शन अथवा सच्ची श्रद्धा की पूर्ण आवश्यकता है।

चारित्र—मोक्ष मार्ग की तीसरी सीढ़ी चारित्र्य है, ज्ञान से मार्ग सूझा और श्रद्धा से उसे सत्य माना भी परन्तु जबतक उस मार्ग पर न चला जाय तबतक नियत स्थान पर पहुंचना असंभव है इसलिये ज्ञानानुसार व्यवहार होना उचित है। ज्ञानका फल ही चारित्र है " ज्ञानस्य फलम् विरतिः " चारित्र विना ज्ञान निष्फल है।

प्राणातिपात अर्थात् हिंसा, असत्य आदि अठारह पापों का त्याग

करना, पंचमहाव्रत, तीन गुप्ति और पांचसमृति धारण करना ही चारित्र है।

तपः—मोक्षकी चतुर्थ सीढ़ी तप है। उसके छः अभ्यन्तर और छः बाह्य, यं बारह भेद हैं। चारित्र से नये कर्मकी आमद रुकती है और तपसे पूर्वकृत कर्म क्षय कर सक्ते हैं। सिर्फ भूखे रहना ही प्रभुने तप नहीं फरमाया, पापका प्रायश्चित्त करना, बड़ोंका विनय करना, वैयावृत्य अर्थात् सबकी सेवा करना, स्वाध्याय करना, ध्यान धरना, और कायोत्सर्ग करना येभी तप के भेद हैं। इस तप को उत्तम अभ्यन्तर तप कहते हैं। उपवास करना, उणोदरी अर्थात् कम खाना, वृत्ति संक्षेप अर्थात् इच्छाओंका निरोध करना, रस परित्याग करना, देहका दमन करना, इन्द्रियों को वश करना ये छः प्रकारका बाह्य तप है।

आत्मा और कर्म के पृथक् करने के उपरोक्त चार प्रयोग प्रभुने फरमाये हैं। अनन्त ज्ञानी श्री वीर प्रभु की वाणी का सार लिखना दोनों भुजाओं द्वारा महासागर तिरने के समान उपहास मात्र साहस है तोभी प्रवचन सागर में से बिंदुरूप दर्शाने का सिर्फ यही आशय है कि जैनधर्मकी भावना कितनी सर्वोत्कृष्ट है. ऐसी उदार और पवित्र भावनाओंका विश्वमें प्रचार करनेके समान परमावश्यक और पारमार्थिक कार्य दूसरा क्या है?

श्री महावीर स्वामी को कैवल्य ज्ञान उपार्जन होनेके पश्चात् श्री गौतम स्वामी आदि ग्यारह विद्वान् ब्राह्मण धर्मगुरू अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिये प्रभु के पास आये, उनकी शंका निवृत्त हुई और तत्त्वाववोध होने से वे प्रभु के शिष्य बन गए, प्रभुने उनको चारित्र मुकुट पहिनाया, त्रिपदी विद्या सिखाई और गणधर पद अर्पण किया, ये ग्यारह ब्राह्मण धर्माचार्योंके साथ इनके ४४०० शिष्योंने श्रीप्रभु के पास दीक्षा ली, श्री महावीर स्वामी ने साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चार तीर्थों की स्थापना की। देशदेश में विचर कर, धर्मोपदेश द्वारा कई जीवों को प्रतिबोध दिया, अनेक राजा महाराजाओं को प्रभुने शिष्य बनाया। मगध देशका राजा श्रेणिक तथा उसका पुत्र कौणिक ये महावीर प्रभुके परम भक्त हुए, इनके सिवाय चेटक, चन्द्रप्रद्योत, उदायन, नंदीवर्धन दशार्णभद्र * जितशत्रु, श्वेतराजा, विजय राजा, तथा पावापुरी का हस्तिपाल नामक राजा प्रभृति अनेक राजा महाराजाओं ने श्री वीर प्रभुकी वाणी सुनकर जैनधर्म अंगीकृत किया था। प्रभु तीस वर्ष तक केवलपन से पृथ्वी को पावन करते विचरते अनेक जीवों को तारते रहे और चरम चौमास पावापुरी नगरी में किया। वहां हस्तीपाल राजा की प्राचीन राजसभा में दो दिन का अनशनव्रत

नोट—जितशत्रु ये कलिंगदेश के यादव वंशी महाराजा थे इनके साथ महाराजा सिद्धार्थ की बहिन का ब्याह किया था।

धारण कर प्रभु उत्तराध्ययन सूत्र फरमाते थे १८ देश के राजादि भी छठ पौषध कर प्रभु की वाणी श्रवण करते थे, इस स्थिति में कार्तिक माह की अमावस्या की रात्रि को पिछले प्रहर चार कर्मों का क्षय कर ७२ वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग प्रभु निर्वाण-मोक्ष पधारे-शाश्वत सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

श्री वीर प्रभुके पवित्र शासन को विजयवंत चलाने वाले वीर शासन रूपी आकाश में उदय हो, सूर्यवत् प्रकाश करने वाले अथवा वीर प्रभु के लगाये हुए कल्पवृक्ष को जल सींचन कर नवपल्लवित रखने वाले जो २ महात्मा उनके शासन में हुए उनका कुछ इतिहास अब देखते हैं।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण समय श्रीगौतम स्वामी और श्री सुधर्मा स्वामी ये दो गणधर विद्यमान थे। शेष नौ गणधर प्रभु के प्रथम ही मोक्ष पधार गए थे, जिस रात्रि को महावीर प्रभु मोक्ष पधारे उसी रात को भगवान् पर से मोह दूर होने पर गौतम स्वामी केवलज्ञानी हुए। केवली को आचार्य पद नहीं मिलता इस लिये श्री सुधर्मा स्वामी श्री महावीर स्वामी के आसन पर विराजे। श्री गौतम स्वामी १२ वर्ष तक कैवल्य प्रव्रज्या पाल ९२ वर्ष की अवस्था में मोक्ष पधारे।

१ सुधर्मास्वामी:—एक समय राजगृही नगरी में पधारे। वहां

ऋषभदत्त नामक एक धनाढ्य श्रावक तथा उनका पुत्र जम्बूकुवार कि जिनका आठ स्वरूपवती कन्याओं के साथ सम्बन्ध हुआ था, उपदेश श्रवण करने आये। अपूर्व उपदेश कर्णगोचर होते ही जम्बू स्वामी की आत्मा मोह निद्रा से जागृत होगई। उन्हें वैराग्य स्फुरित हुआ। संसार की अनित्यता का भान होते ही शाश्वत शांति की प्राप्ति के लिये उनका मन ललचाया। घर आ माता पिता से दीक्षार्थ आज्ञा चाही, अतिआग्रह के कारण माता पिता ने जम्बू स्वामी से आठों कन्याओं के साथ विवाह करने पश्चात् दीक्षा लेने का अनुरोध किया, जम्बूस्वामीने मंजूर किया, लग्न हुए, आठों तत्काल ब्याही हुई स्त्रियों से जम्बू स्वामीने प्रथम रात को ही दीक्षा लेने का अभिप्राय दर्शाया. पति पत्नियों में वैराग्य और शृंगार विषय का बहुत रसमय संवाद शुरु हुआ, इतने में प्रभवा नामक एक राजपुत्र जो अपनी राजगादी न मिलने से लूट खसौट का धंधा करता था ५०० चोर सहित जम्बू स्वामी के घर में घुसा। चोरी का पाप कृत्य करते वैराग्य रस पूरित वचनामृत उसके कर्णपट पर पड़े, पड़ते ही उसे अपने अपकृत्यों का पश्चात्ताप होने लगा और वैराग्य उत्पन्न हुआ. आठ स्त्रियां भी संवाद में पतिसे पराजित हो वैराग्य रस में लीन होगई। उन्होंने तथा प्रभवादिक ५०० चोरों ने संसार परित्याग कर सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षा ली। उस समय जम्बू की उम्र सिर्फ १६ वर्ष की थी।

जम्बूस्वामी को तत्त्वावबोध होने के लिये श्री महावीर स्वामी की अर्थ रूप प्रकाशी हुई । अनंत भाव भेद मय वाणी में से सुधर्मा स्वामी ने द्वादश अंग और उपांग की योजना की । वर्तमान काल में आचारांगादि जो जिनागम हैं वे गणधर श्री सुधर्मा स्वामी के ग्रथित किये हुए हैं प्रभु के निर्वाण के पश्चात् १२ वें वर्ष सुधर्मा स्वामी को केवल ज्ञान उपार्जित हुआ और २० वें वर्ष १०० वर्ष की आयु भोगने पर मोक्ष पद प्राप्त हुआ ।

२ जम्बू स्वामीः—श्री सुधर्मा के पश्चात् श्री जम्बूस्वामी पाट पर विराजे । श्री वीर स्वामी के २० वर्ष पश्चात् उन्हें केवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ और ६४ वें वर्ष ८० वर्ष की आयु भोग मोक्ष पधारे । श्री जम्बूस्वामी के पश्चात् भरत क्षेत्र से दस वस्तुएं विच्छेद होगईं । १ केवल्य ज्ञान २ मनःपर्यव ज्ञान ३ परमावधि ज्ञान ४ पुलाक लब्धि ५ आहारिक शरीर ६ क्षपक श्रेणी ७ उपशम श्रेणी ८ परिहारविशुद्ध सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात ये तीन चारित्र ९ जिनकल्पी साधु और १० क्षायिक सम्यक्त्व ।

३ प्रभवा स्वामी—श्री जम्बूस्वामी के पश्चात् श्री प्रभवा स्वामी पाट पर विराजे, उन्होंने ज्ञानोपयोग द्वारा राजगृह के वासी शय्यंभवभट्ट को आचार्य पद योग्य समझ उपदेश दिया और उन्होंने दीक्षा ली. ८५ वर्ष की आयुष्य भोग कर वीर निर्वाण से ७५ वर्ष बाद श्री प्रभवास्वामी मोक्ष पधारे ।

४—श्री शय्यंभव स्वामी—उनके पश्चात् श्री शय्यंभव स्वामी आचार्य हुए उन्होंने दीक्षा ली उस समय उनकी स्त्री गर्भवती थी उससे । मनक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । मनक ने नवें वर्ष में पिता के पास दीक्षा ली. परंतु पिताने उसकी आयु अल्प समझ उसे अल्प समय में श्रुतज्ञानी बनाने के आशय से पूर्व में से दशवैकालिक सूत्र का उद्धार कर मनक मुनि को अध्ययन कराया । अणगार धर्म आराधकर दीक्षा लिये पश्चात् छः महीने में ही मनक मुनि स्वर्ग पधार गए और शय्यंभव स्वामी श्री वीर निर्वाण संवत् ६८ में स्वर्ग पधारे ।

५ श्री यशोभद्र स्वामी—श्री शय्यंभव स्वामी के पाट पर यशोभद्र स्वामी बिराजे-वे वीर प्रभु पश्चात् १४८ वें वर्षमें स्वर्ग पधारे ।

६ श्री संभूति विजय स्वामी—यशोभद्र स्वामी के पश्चात् श्री संभूति विजय स्वामी आचार्य हुए । वे वीर संवत् १५६ वें वर्ष स्वर्ग पधारे ।

७ श्री भद्रबाहु स्वामी:—दक्षिण देशके प्रतिष्ठानपुर नगर में भद्रबाहु तथा वराहमिहिर नामक ब्राह्मण रहते थे, उन्होंने यशोभद्र स्वामी का उपदेश श्रवण कर वैराग्य पा दीक्षा ली—भद्रबाहु स्वामी चौदह पूर्व धारी हुए और संभूति विजय स्वामी के पश्चात्

आचार्य हुए। वराहमिहिर को इनसे ईर्षा हुई और जैन दीक्षा त्याग ज्योतिष विद्या के बल से लोगों में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने वराह संहिता नामक एक ज्योतिष शास्त्र बनाया है ऐसी कथा प्रचलित है कि वे तापस बन अज्ञान तप से तप्त हो मरकर व्यंतर देव हुए और जैनों को उपद्रव ग्रसित रखने के लिये महामारी रोग फैलाया, उस उपसर्ग की शांति के लिये भद्रबाहु स्वामीने 'उवसग्गहर' स्तोत्र रचा और उसके प्रभाव से उपद्रव शांत होगया। इतिहास प्रसिद्ध मौर्य वंशीय ※ चंद्रगुप्त राजा भद्रबाहु स्वामी का परम भक्त हुआ।

※ श्रेणिक राजा का पौत्र उदाई अपुत्र मरने के पश्चात् पाटली पुत्र की गादी एक नाई (हजाम) के नंद नामक पुत्र को प्राप्त हुई, इस राजा का कल्पक नामक मंत्री था। अनुक्रम से नंद वंश के नौ राजा हुए और उसके प्रधान भी कल्पक वंशी हुए।

चाणक्य नामक ब्राह्मणकी सहायता से चंद्रगुप्तने पराजित किया जिससे वह पाटलीपुत्र का राजा हुआ। नंद के वंशजों ने १५५ वर्ष तक राज्य किया था, चंद्रगुप्त राजा जैनी था इसलिये धर्म द्वेष के कारण मुद्रा राक्षस आदि पुस्तकों में उसे शुद्र जातिका कहा है परन्तु क्षत्रिय उपकारिणी महासभाने अनेक अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि चं[illegible] सौर्यवंशी क्षत्रिय था।

ग्रीस का राजा महान् सिकंदर (Alexander the great.) चन्द्र गुप्त के समय भारत पर चढ़ आया था. (ई० सन् पूर्व ३२७ से ३२३ ग्रीक लेखक के कथनानुसार चन्द्रगुप्त के पास ३० हजार घुड़ सवार, ६ लाख सैनिक, २ हजार रथ तथा ४ हजार हाथी थे, सिकंदर के सेनापति सिल्युकस को चन्द्रगुप्त राजा ने युद्ध में पराजित कर भगा दिया था।

वीर-निर्वाण के पश्चात् १७० वें वर्ष श्री भद्रबाहु स्वामी स्वर्ग पधारे उनके पश्चात् चौदह पूर्वधारी साधु भरतक्षेत्र में नहीं हुए.

८ स्थूलिभद्र स्वामी—नवें नंद राजा का कल्पक वंशीय शकडाल नामक मंत्री था. उसके स्थूलिभद्र और श्रीयक नामक दो पुत्र थे, पाटली पुत्रमें कोशा नामक एक अतिरूप वाली वेश्या रहती थी। प्रधान पुत्र स्थूलिभद्र उसके प्रेमपाश में फंस गया और हमेशा वहीं रहने लगा, शकडाल के पश्चात् श्रीयक को प्रधान पद देने लगे परन्तु श्रीयक ने कहा कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्थूलिभद्रजी १२ वर्ष से कोशा वेश्या के घर में रहते हैं उन्हें बुलाकर मंत्री पद दीजिये, राजाने स्थूलीभद्र को बुलाकर मन्त्रीपद लेने को निमन्त्रित किया. लज्जावश स्थूलिभद्र राज्य सभा में नीची दृष्टिसे देखता रहा और विचारकर उत्तर देने की प्रार्थना की. गहन विचार करते राज्य-खटपट में पड़ना उन्हें योग्य न जचा, संसार भी उन्हें अनित्य मालूम हुआ। वे वैराग्य उत्पन्न होने पर

साधुवेष पहिन राजसभा में आये और कहा कि राजन् ! मैंने तो ऐसा विचार किया है, फिर उन्होंने संभूतिविजय स्वामी के पास से दीक्षा ली. चातुर्मास समीप समझ उन्होंने कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास निर्गमन करने की गुरु से आज्ञा मांगी. गुरुने श्रेयस्कर समझ आज्ञा देदी. उसी समय तीन दूसरे मुनि भी सिंह की गुफा में, सर्प के बिल में और कुएं के रहँट समीप चातुर्मास करने की आज्ञा ले निकले।

स्थूलिभद्र स्वामी कोशा के घर गए, उन्हें आते देख कर वेश्या ने सोचा ऐसे सुकोमल देहवाले से इतने कठिन महाव्रतों का पालन किस रीती से होगा ? मेरा प्रेम अभी उनके दिल से नहीं हटा। स्थूलिभद्र को समीप आते ही वेश्याने विशेष आदर सन्मान दे कहा स्वामिन् ! इस दासी पर महत् कृपा की जो आज्ञा हो वह सुख से फर्माइये. निर्मोही निर्विकारी मुनि बोले, मुझे तुम्हारी चित्रशाला में चातुर्मास व्यतीत करना है. वेश्याने चित्रशाला सुपुर्द कर दी। पश्चात् स्वादिष्ट भोजन बहिराये फिर उत्तम शृंगार कर उनके सामने आ खड़ी हुई। पूर्वप्रेम का स्मरणकर, पूर्व भोगे हुए भोगों को याद कर वह वेश्या अत्यन्त हाव भाव दिखाने लगी। परन्तु मुनिराज तो मेरुके समान अटल रहे। मनमें लेश मात्र भी विकार उत्पन्न न हुआ; वरन् उस वेश्या को भी उपदेश दे श्राविका बना लिया, चातुर्मास पूर्ण हुआ. वे गुरु के पास आये, वहांतक सिंह गुफा वासी आदि तीनों मुनिवर भी

आ पहुंचे थे। सब से अधिक सन्मान गुरुजी ने स्थूलिभद्रका किया, जिससे अन्य शिष्यों को ईर्षा हुई और द्वितीय चातुर्मास लगते ही उन्हों ने भी कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास करने की आज्ञा चाही। गुरुके इन्कार करने पर भी वे कोशा वेश्याके यहां गये, एकांत में वेश्या का अद्भुत रूप देखकर ही मुनिवरोंका मन चलायमान होगया, परंतु कोशा श्राविका ने उन्हें युक्ति से उपदेश दे गुरुके पास वापिस पठाया।

श्री भद्रबाहु स्वामी नैपाल देशमें विचरते थे. उनके पास जाकर स्थूलिभद्र मुनि ने १० पूर्व का अभ्यास किया और भद्रबाहुस्वामी के पश्चात् उन्होंने ही आचार्यपद दिपाया, श्रीवीरनिर्वाण के पश्चात् २१५ वें वर्ष स्थूलिभद्रजी स्वर्ग पधारे।

९ श्री आर्यमहागिरि—श्री स्थूलिभद्रजीके आसनपर आर्यमहागिरि तथा आर्य सुहस्ति स्वामी पधारे. इनके समय बड़ा भारी दुष्काल पड़ा तो भी अन्न की स्पृहा न करने वाले जैन मुनियों को लोग भाव से आहार बहराते थे. एक समय एक क्षुधा पीड़ित भिक्षुक गोचरी से वापिस आते समय मुनियों के पीछे २ अन्न के लिये घबराता हुआ उपाश्रय में आया, आर्यसुहस्तिजी ने कहा कि साधु के सिवाय हमारा आहार पाने का हकदार कोई नहीं हो सक्ता. तत्काल उसने दीक्षा ली और अधिक दिन से क्षुधापीड़ित होने से

इतना अधिक आहार किया कि वह मरणांतिक कष्ट पाने लगा, उस समय बड़े २ साहूकारों ने उस नवदीक्षित मुनि की औषधोप-चार आदि से उचित वैयावृत्य की, सिर्फ जैन-मुनिका वेष पहिरने से ही अपनी स्थिति में जमीन आसमान जैसा महान् अंतर हुआ देख वह बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव से वेदना सह मरकर पाटली पुत्र के राजा चंद्रगुप्त का पुत्र बिंदुसार बिंदुसार का पुत्र अशोक और अशोक का पुत्र कुणाल, कुणाल के साम्प्रति नामक पुत्र हुआ।

साम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति महाराज के समागम से जाति स्मरण ज्ञान होगया उन्होंने श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये और देश देशान्तरों में उपदेशक भेज जैन धर्म की पवित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में अमरपटहा (ढिंढोरा) बजवाया अनार्य देशों में भी गृहस्थ उपदेशक भेजकर लोगों को अहिंसा धर्म के प्रेमी बनाये:—

एक वक्त आर्य सुहस्तिजी उज्जैन पधारे और भद्रा सेठानी की अश्वशाला में उतरे भद्रा का अवंती सुकुमार नामक एक महा तेजस्वी पुत्र था—वह अपनी स्त्रियों के साथ महल में देव सदृश सुख भोगता था। एक समय आचार्य महाराज पांचवें देवलोक के नलिनी गुल्म विमान का अधिकार पढ़ रहे थे, वह सुनकर अवंति

कुमार ने सोचा कि पूर्व में ऐसी रचना मैंने कहीं साक्षात् देखी विचार करने पर उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया, माता की आज्ञा ले आचार्य के समीप दीक्षा ली. अधिक समय तक साधुता घोर कष्ट सहन करते रहना उन्हें योग्य न जंचा जिससे गुरु अर्ज की कि आपकी आज्ञा हो तो अनशन कर जहां से आया हूं वहां शीघ्र जाऊं ।

गुरु की आज्ञा पाते ही स्मशान में जा कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित हुए राह में कंकर कांटे लगने से सुकुमार मुनि के पैरों से रक्त धारा बहने लगी थी उस रक्त को चूंसती चाटती हुई एक सियालनी मय बच्चों के ध्यानस्थ मुनि समीप आई और उनके शरीर को भक्ष्य बनाया आत्मभाव में स्थित मुनि तनिक भी न डिगे समाधि पूर्वक काल कर नलिनी गुल्म विमान में देवता हुए दृढ़ मनो बल द्वारा मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? एक प्रहर में पांचवें देवलोक की समृद्धि प्राप्त करने वाले कुमार ! धन्य है आपके धैर्य को ! वीर-निर्वाण के पश्चात् २४५ वें वर्ष आर्य महागिरी और २६५ वें वर्ष आर्य सुहस्ति स्वामी स्वर्ग पधारे ।

१० बलिसिंहजी (वालीसिंहजी) आर्य महागिरि के पाट पर उनके शिष्य बलसिंहजी पधारे, उनके शिष्य उमास्वामी और उमास्वामी के शिष्य श्यामाचार्य हुए, इन्ही श्यामाचार्य ने श्री प्रज्ञापना सूत्रको पूर्व से उद्धृत किया, उनके पश्चात् अनुक्रम से ११ सोवन स्वामी १२

वीरस्वामी १३ स्थंडिल स्वामी १४ जीवधर स्वामी १५ आ
समेद स्वामी १६ नंदील स्वामी १७ नागहस्ति स्वामी १८ रेवं
स्वामी १९ सिंहगणिजी २० थंडिलाचार्य २१ हेमवंत स्वामी २
नागजित स्वामी २३ गोविन्द स्वामी २४ भूतदीन स्वामी २
छोहगणिजी २६ दुःसहगणिजी और २७ देवार्धिगणिजी क्षम
श्रमण हुए।

श्री वीर निर्वाण से ९८० वें वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् ५१०
समर्थ आठ आचार्यों ने समय सूचकता समझ वर्तमान प्रचलि
अपने साधन संग्रह करने का योग्य विचार किया। वल्लभीपुर (काठिया
वाड़ में भावनगर के पास वला स्टेट है) में टाडकृत राजस्थान
लिखे अनुसार जैनियों की घनी वस्ती थी और राज्य शासन शिलादि
के हाथ में था जैन धर्म की विजय ध्वजा फहराने वाले इस प्रसिद्ध
शहर पर वि० सं० ५२५ में पार्थियन, गेट और हूण लोगों
हमला किया, जिससे तीस हजार जैन कुटुम्बी वह शहर त्याग मारवा
में जा बसे. इस भगाभगी दुष्काल के कारण लिखा हुआ पूर्ण शु
नहीं हुआ जिससे सूत्रों की शृंखला छिन्नभिन्न होगई फिर बौ
लोगों ने भी जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी व प्रतिपक्षी बन जैन शासन
समुच्छेद उखाड़ डालने का प्रयत्न किया, ऐसे अनेक कारणों से
भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् विक्रम संवत् आठसौ तक अनेक जै
विद्वान् हुए तो भी उनकी कृति हाथ नहीं लगती.

देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के पाट पर अनुक्रम से २८ वीरभद्र
२९ संकरभद्र ३० यशोभद्र ३१ वीरसेन ३२ वीरसंग्राम ३३ जिनसेन
३४ हरिसेन ३५ जयसेन ३६ जगमाल ३७ देवऋषि ३८ भीमऋषि
३९ कर्मऋषि ४० राजऋषि ४१ देवसेन ४२ संकरसेन ४३ लक्ष्मी-
लास ४४ राम ऋषि ४५ पद्मसूरि ४६ हरिस्वामी ४७ कुशलदत्त
४८ उवनी ऋषि ४९ जयसेन ५० विजयऋषि ५१ देवसेन ५२ सूरसेन
५३ महासूरसेन ५४ महासने ५५ गजसेन ५६ जयराज ५७ सिश्रसेन
५८ विजयसिंह ५९ शिवराजजी ६० लालजी ऋषि ६१ ज्ञानजी
ऋषि हुए।

महावीर प्रभु से देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक के १००० वर्ष
दरम्यान वीर शासन सूर्य अपना दिव्य प्रकाश विश्व में प्रकट कर
रहा था, परंतु उनके पश्चात् से ज्ञानजी ऋषि के १०० वर्ष तक यह
प्रकाश शनैः शनैः कम होता गया और ज्ञानजी ऋषि के समय तो
जैन दर्शन की ज्योति बिल्कुल मंद होगई थी, निरंकुश और मानके
भूखे साधुओं की उत्सूत्र प्ररूपना, श्रावक वर्ग की अज्ञानता और अंध
श्रद्धा, राज्यविप्लाव और अराजकता से भारत में व्याप्त हुई अंधाधुंधी
आदि गाढ काले बादलों ने इस सूर्य को चारों ओर से घेर लिया था,

साधु अध्यात्मिक जीवन विताते और व्यवहारिक खटपट से
सर्वथा दूर रहते थे परन्तु ज्यों २ उनका अध्यात्म प्रेम कम होता

गया त्यों २ बाह्याडम्बर की वृद्धि होने लगी, वे तुच्छ २ मत भेदों को बड़ा २ स्वरूप दे नये २ गच्छ उत्पन्न करने लगे, जिससे जैन संघ की छिन्नभिन्नता हो एकता नष्ट होने लगी। अपना पक्ष प्रबल और दूसरों को अबल करने के लिए परस्पर निन्दा और मिथ्या आक्षेप लगाने में ही उनका समय और शक्ति का अपव्यय होने लगा, इससे जैन-धर्म के अन्य सिद्धान्तों पर ही जैन साधुनामधराने वालों के हाथ से ही बार २ कुठार प्रहार होने लगा, साधुओं में शिथिलाचार बढ़ गया कई तो महावलम्बी और परिग्रहधारी होगए यति का नाम जो कि अति पवित्र गिना जाता था, उस शब्द की महत्ता में हानि पहुंचाई श्रावकों को अपने पक्ष में लेने के लिये मंत्र, जंत्र और वैदिक आदि धंधे बढ़ने लगे तथा हिंसादि निषिद्ध कार्य करने पर तत्पर हुए मन, वचन और काया के योग से भी हिंसा नहीं करना, नहीं कराना और करने वाले को ठीक नहीं समझना इस अणगार धर्म की मर्यादा का प्रत्यक्ष उल्लंघन होने लगा अन्य मतावलंबियों की प्रवृत्ति का अनुकरण कर स्थान २ पर देवालय और प्रतिमाएं स्थापन कीं, अपने २ पक्ष के यतियों के लिये उपाय बंधवाये. वर घोड़े चढ़ना, उत्सव करना, नाच नचाना इत्यादि प्रवृत्तियों के प्रेरक और नायक होनायति अपना कर्त्तव्य समझने लगे, सारांश यह है कि उस समय साधुवर्ग से चारित्रधर्म लोप होने लगा था और श्रावक समुदाय कर्त्तव्य से पदच्युत हो उनके पीछे २ चलती

राह पर चलता था. ज्ञानजी ऋषि के समय जैन धर्म की परिस्थिति उपरोक्त थी।

ऐसा होते भी वीर–शासन साधु विहीन नहीं हुआ। अनुयायियों की अल्प संख्या होते भी अल्प संख्या में साधु सर्व काल विद्यमान थे, जब २ घोर तिमिर बढ़ जाता तब २ कोई न कोई महापुरुष उत्पन्न होता और जैन प्रजा को सन्मार्गारूढ करता था।

जैन–शासन की मंद हुई ज्योति को विशेष उद्योत करने वाले अनेक नव युग प्रवर्तक समर्थ महात्मा इन दो हजार वर्षों में उत्पन्न हो चुके थे,

ज्ञानजी ऋषि के समय में भी ऐसे एक धर्म सुधारक महा पुरुष की अत्यंत आवश्कता उपस्थित हुई कि जो साधुवर्ग से उपरोक्त ऐबों को दूर कर सत्य का प्रकाश फैलावे और जैन-समाज में बढ़े हुए संदेह और मिथ्या मान्यता को नष्ट करे. इतिहास साक्षी है कि जब २ अंधाधुन्धी बढ़जाती है तब २ कोई न कोई वीर नर पृथ्वी पर प्रकट हो पुनरुद्धार करता है, इसी नियमानुसार पंद्रह सौ के संवत् में ऐसा एक महान् धर्म सुधारक गुजरात के पाय तख्त अहमदाबाद शहर में ओसवाल (क्षत्रिय) ज्ञाति में उत्पन्न हुआ, उनका नाम लोंकाशाह था, वे सराफी का धंधा करते थे. राज्य दरबार में उनका अधिक मान था, हस्ताक्षर उनके बहुत सुंदर थे.

लौंकाशाह के पश्चात् फिर से जब ये मेघ❀चढ़ आये तब उन्हें नष्ट करने के लिये गुजरात में किसी समर्थ महापुरुष के प्रादुर्भाव होने की आवश्यकता हुई उस समय प्राकृतिक नियमानुसार धर्मसिंहजी लवजी ऋषि और श्री धर्मदासजी अणगार एक के पश्चात् एक यों तीन महा व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिखा लौंकाशाह के उपदेश का पुनरुद्धार किया. बल्कि शासन सुधारने का जो कार्य उन्होंने अपूर्ण छोड़ा था उसे इस त्रिपुटी ने पूर्ण किया. उन्होंने महावीर की आज्ञानुसार अणगार धर्म की अराधना प्रारंभ की. उनके विशुद्ध ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके प्रभाव से तथा शास्त्रानुकूल और समयानुकूल सदुपदेश से लाखों

❀ एक अंग्रेज बानू मिसीस स्टीवन्सन् कि जो राज कोट में रहती थी अपनी Heart of jainism (नाम पुस्तक में इस समयका उल्लेख यों करती हैं।

Firmly rooted amongst the laiter, they were able once hurricane was past to reappear oncemore and begin to throw out fresh branches...many from the Lonka sceb. Joined this reformer and they took the name of Sthanakwasi, whilst their enemics called them Dhundhia Searchers. This tille has grown to be quite an honourable one.

मनुष्य उनके भक्त होगए । उस समय से इन्होंने जैन शासन का अपूर्व उद्योत किया, तब से लौंका गच्छ यति वर्ग और पंच महाव्रत धारी साधु ऐसे दो विभागों में जैन श्व० पंथ बँट गया. लौंका गच्छीय तथा अन्य गच्छीय जो श्रावक पंच महाव्रतधारी साधुओं को मानने वाले तथा उनके दिखाये हुए मार्ग पर चलने वाले हुए वे साधुमार्गी नाम से प्रख्यात हुए यह मार्ग कुछ नया न था इसके प्रवर्तकों नें कुछ नये धर्म शास्त्र नहीं बनाये थे. सिर्फ शास्त्र विरुद्ध चलती प्रणाली को रोक शास्त्र की आज्ञा ही वे पालने लगे, मारवाड़ की सम्प्रदाय भी इसी मार्ग का अनुसरण करने वाली होने से वे भी साधुमार्गी नाम से पहिचाने जाते हैं । यहां इस सम्प्रदाय के प्रभावशाली पुरुषरत्नों में से थोड़े से मुख्य २ आचार्यों का कुछ इतिहास अवलोकन करना अप्रासंगिक नहीं होगा ।

श्री: धर्मसिंहजी: — ये जामनगर काठियावाड़ के दशा श्रीमाली वैश्य थे इनके पिता का नाम जिनदास और माता का नाम शिवा था, लौंकागच्छ के आचार्य रत्नसिंहजी के शिष्य देवजी महाराज के व्याख्यान से १५ वर्ष की उम्र में धर्मसिंहजी को वैराग्य उत्पन्न हुआ और पिता पुत्र दोनों ने दीक्षा ली. विनय द्वारा गुरु कृपा सम्पादन कर ज्ञान ग्रहण करने के लिये प्रबल वैराग्यवान धर्मसिंहजी मुनि सतत उद्योग करने लगे. ३२ सूत्रोंके उपरांत व्याकरण

न्याय प्रभृति में भी वे पारंगत विद्वान् हुए. उनकी स्मरणशक्ति
अत्यंत तीव्र थी. वे अष्टावधान करते थे, शीघ्र काव्य रचते थे,
दोनों हाथ तथा दोनों पैर से कलम पकड़ कर लिख सके थे। बा
सूत्री होने के पश्चात् एक दिन धर्मसिंहजी अणगार सोचने लगे कि
सूत्र में कहे अनुसार साधु धर्म जो हम नहीं पालते तो रत्न
चिंतामणि समान इस मानव जन्म की सार्थकता कैसे सिद्ध होगी।
उन्होंने शुद्ध संयम पालने का निश्चय किया और गुरु से भी
कायरता त्याग कटिबद्ध होने का आग्रह किया गुरुजी पूज्य पद
मोह न त्याग सके

अंतमें उनकी आज्ञा और आशीर्वाद भी आत्मार्थी और सहाध्यायी
यतियों के साथ उन्होंने पुनः शुद्ध दीक्षाली (विक्रम सं. १६८५)
धर्मसिंहजी अणगार ने २७ सूत्रों पर (टब्बा) टिप्पणी लिखी। ये
टिप्पणियां सूत्ररहस्य सरलता पूर्वक समझाने को अति उपयोगी
हैं। विक्रम सं. १७२८ में उनका स्वर्गवास हुआ. उनका सम्प्रदा
दरियापुरी के नामसे प्रख्यात है।

श्रीलवजी ऋषिः—सूरत में वीरजी वहोरा नामक एक दशा
श्रीमाली साहूकार रहता था. उनकी लड़की फूलबाई से लवजी
नामक पुत्र हुआ. लौंकागच्छ के यति बजरंगजी के पास उन्होंने शास्त्र
[illegible] किया और दीक्षा ली. यतियों की आचार शिथिलता देखकर

। वर्ष बाद उन से प्रथक् हो उनने विक्रम संवत् १६८२ में
ायमेव दीक्षा ली। अनेक परिषह सहन किये और शुद्ध चारित्र पाल,
न धर्म दिपा स्वर्ग पधारे। मुनि श्री दौलतऋषिजी तथा अमिऋषिजी
भृति उनकी सम्प्रदाय में हैं।

श्रीधर्मदासजी अणगार—ये अहमदाबाद के समीप सरखेज
ाम के निवासी भावसार ज्ञाति के थे। उनके पिता का नाम
ीवन कालिदास था। विक्रम संवत् १७१६ में इन्होंने प्रबल वैराग्य
दीक्षा ली और उसी दिन गोचरी जाते एक कुम्हारिन ने राख
हराई। वह थोड़ीसी पात्र में गिरी और थोड़ी हवा में बिखर गई।
ह वृत्तांत इन्होंने धर्मसिंहजी से कहा।

इसका उत्तर धर्मसिंहजी ने फर्माया कि, जैसे छार बिन कोई
र खाली नहीं रहता उसी तरह प्रायः तुम्हारे शिष्यों के बिना
ोई ग्राम खाली न रहेगा और छार हवा में फैल गई इसी तरह
म्हारे शिष्य चारों ओर धर्म का प्रसार करेंगे। धर्मदासजी के ९९
ाष्य हुए। जिन्होंने देश देशान्तरों में जैनधर्मकी अत्यन्त सुकीर्त्ति फैलाई
९ शिष्यों में से ९८ तो मालवा, मारवाड़, मेवाड़ और पंजाबमें विचरते
ौर जैनधर्म की ध्वजा फहराते थे, सिर्फ एक मूलचंदजी स्वामी
ुजरात में रहे उन्होंने गुजरात में घूम कर जैनधर्म का अत्यन्त
चार किया। मूलचंदजी स्वामी के ७ शिष्य हुए वे भी जैन शासन
ो दिपाने वाले हुए, उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं।

१ गुलाबचंद्रजी २ पंचाणजी ३ बनाजी ४ इन्द्रजी ५ बनारसी ६ विट्ठलजी और ७ भूपणजी उनके शिष्यों ने काठियावाड़ में १ लींबड़ी २ गोंडल ३ बरवाला ४ आठ कोटी कच्छी ५ चूड़ा ६ ध्रांगध्रा ७ सायला ऐसे ७ संघाड़े स्थापित किये।

गुलाबचंद्रजी के शिष्य बालजी स्वामी, बालजी स्वामी के शिष्य हीराजी स्वामी, हीराजी स्वामी के शिष्य कानजी स्वामी और कानजी स्वामीके शिष्य अजरामरजी स्वामी हुए। ये अजरामरजी महाप्रतापी और पंडित पुरुष हुए। उनके नाम से वर्तमान में लींबड़ी संप्रदाय (संघाड़ा) प्रख्यात है।

श्री दौलतरामजी तथा श्री अजरामरजी—ये। दोनों महात्मा समकालीन थे। दौलतरामजी ने सं। १८१५ में और अजरामरजी ने १८१६ में दीक्षा ली थी। श्री दौलतरामजी महाराज पू० हुकमीचन्द्रजी महाराज के गुरु के गुरु थे, वे अति समर्थ विद्वान् और सूत्र सिद्धान्त के पारगामी थे. मालवा, मारवाड़, में ये विचरते और इसी प्रदेश को पावन करते थे, उनके असाधारण ज्ञान सम्पत्ति की प्रशंसा श्री अजरामरजी स्वामी ने सुनी। अजरामरजी स्वामी का ज्ञान भी बढ़ा चढ़ा था तो भी सूत्र ज्ञान में अधिक उन्नति करने के लिये श्री दौलतरामजी महाराज के पास अभ्यास करने की उनकी इच्छा हुई। इस पर से लींबड़ी संघ ने एक खास

। के साथ दौलतरामजी महाराज की सेवा में प्रार्थना पत्र आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी महाराज उस समय बूंदी कोटे जते थे। उन्होंने इस विज्ञप्ति को सहर्ष स्वीकृत कर काठियावाड़ ोर विहार किया। वह भेजा हुआ मनुष्य भी अहमदाबाद तक श्री के साथ ही था परंतु वहां से वह पृथक हो लींबड़ी संघ को पूज्य पधारने की बधाई देने आया। उस समय लींबड़ी संघ के आनंद ार न रहा, लींबड़ी संघने उस मनुष्य को रु० १२५०) बधाई ट दिये। पूज्य श्री दौलतरामजी लींबड़ी पधारे तब वहां के संघ ानका अत्यन्त आदर सत्कार किया।

लींबड़ी संघ की अनुपम गुरुभक्ति देखकर दौलतरामजी महा- श्री भी सानंदाश्चर्य हुए। पंडित श्री अजरामरजी स्वामी पूज्यश्री तरामजी महाराज से सूत्र सिद्धांत का रहस्य समझने लगे. ़ित सार के कर्ता पं० मुनि श्री जेठमलजी महाराज इस समय ानपुर विराजते थे वे भी शास्त्राध्ययन करने के लिये लींबड़ी पधारे (वे भी ज्ञान गोष्ठी के अपूर्व आनंद का अनुभव करने लगे। भिन्न २ ादाय के साधुओं में परस्पर उस समय कितना प्रेमभाव था (साधुओं में ज्ञान पिपासा कितनी तीव्र थी यह इस पर स्पष्ट सिद्ध है। पं० श्री० दौलतरामजी महाराज के साथ २ ाने ही समय तक विचर कर पं० श्री अजरामरजी महाराजने । ज्ञान में अपरिमित अभिवृद्धि की थी और पूज्य श्री दौलतरामजी

महाराज के आग्रह से पूज्य श्री अजरामरजी महाराजने
में एक चातुर्मास भी उनके साथ किया था।

पूज्य श्री हुकमीचन्दजी स्वामी—पूज्य दौलतराम
के पश्चात् श्रीलालचंद्रजी महाराज आचार्य हुए. और उनके
पर परम प्रतापी पूज्य श्री हुकमचंद्रजी महाराज हुए टोडा (र.
के) ग्राम के रहने वाले वे ओसवाल गृहस्थ थे उनका गोत्र च
था. बूंदी शहर में सं० १८७९ में मार्गशीर्ष मास में पूज्य श्री
चंद्रजी स्वामी के पास उन्होंने प्रबल वैराग्य से दीक्षा ली। २१
तक उन्होंने बेले २ तप किया चाहे जितने कड़क शीत में भी
सिर्फ एक ही चादर ओढ़ते थे; शिष्य बनाने का उनके
त्याग था, उसने सब मिठाई भी खाना त्याग दी थी। सिर्फ
द्रव्य रखकर बाकी के सब द्रव्यों का यावज्जीव पर्यंत त्याग
था वे बिल्कुल कम निद्रा लेते और रात दिन स्वाध्याय
ध्यानादि प्रवृत्ति में ही लीन रहते थे. नित्य २०० नमोत्थुणं गिनते
थे. आप समर्थ विद्वान् होते भी निरभिमानी थे. कोई चर्चा करने
आता तो अपने आज्ञावर्ती साधु श्रीशिवलालजी महाराज के पास
भेज देते, अपने गुरु पूज्य श्री लालचंद्रजी महाराज शास्त्रानुसार
सख्त आचार पालने के लिये बार बार विनय करते रहते परन्तु
अपनी विनय अस्वीकृत होने से पृथक् विहरने लगे और त
संयमादि में वृद्धि करने लगे, इससे गुरुजी उनका अति नि

लगे, किसीने उनको आहार पानी देना नहीं, उपदेश
नहीं तथा उतरने के लिये स्थान भी नहीं देना ऐसे २
ा देने लगे, क्षमा के सागर श्री हुकमीचंद्रजी महाराज ने इस
निक भी लक्ष नहीं दिया वे तो गुरू के गुणानुवाद ही करते
कहते थे कि मेरे तो वे परम उपकारी पुरुष हैं महा
वान् हैं मेरी आत्मा ही भारी कर्मी है। इस तरह वे गुरु
ा और आत्मनिंदा करते थे तो भी गुरुजी की ओर
से वाक्बाण के प्रहार होते ही रहे यों करते २ चार वर्ष
गए, परंतु वे गुरु के विरुद्ध कदापि एक शब्द भी न
। चार वर्ष बाद गुरु को आप ही आप पश्चात्ताप होने
ा और वे भी निंदा के बदले स्तुति करने लगे। अंत में
ख्यान में प्रकट तौर पर फरमाने लगे कि हुकमचंद्रजी तो चौथे
के नमूने हैं वे पवित्रात्मा और उत्तम साधु हैं वे अद्भुत
के भंडार हैं। मैंने चार वर्ष तक उनके अवगुण गाने में त्रुटि
रक्खी परंतु उसके बदले उन्होंने मेरे गुण ग्राम करने में कमी
की। धन्य हैं ऐसे सत्पुरुष को! श्रीमान् हुकमीचंद्रजी महाराज
गुण समूहरूप सूर्य स्वतः प्रकाशित था, जिससे लोगों की
ले से ही उनपरपूज्य भक्ति तो थी ही फिर आचार्य श्री के
गारों का अनुमोदन मिलते ही उनकी यशदुंदुभी दशही दिशाओं
गूंजने लग गई। उन्होंने अपनी सम्प्रदाय में क्रियोद्धार किया

तब से यह सम्प्रदाय उनके नाम से प्रसिद्ध हुई और पहिचानी जाने लगी। उनके अक्षर मोती के दाने जैसे थे. उनकी हस्तलिखित १६ सूत्रों की प्रतियां इस सम्प्रदाय में अब भी वर्तमान हैं। सं० १६१७ के वैशाख शुद्ध ५ मंगलवार को जावद ग्राम में देहोत्सर्ग कर ये पवित्रात्मा स्वर्ग पधारे।

श्रीयुत ग्योइट सत्य फरमाते हैं कि, "काल से भी अविच्छिन्न हो ऐसा कोई प्रतापी और प्रौढ स्मारक मृत्युबाद छोड़ जाना उचित है कि जिससे देह नश्वर होने से नाश होजाय तो भी उस स्मारक के कारण हमेशा जीवित रहे और वही वास्तविक कीर्त्ति का फल है ऐसे महाराज--महापुरुष विरले ही जन्म लेते हैं।

पूज्य शिवलालजी स्वामी—श्री हुकमचंद्रजी महाराज के पाट पर शिवलालजी महाराज विराजे उन्होंने सं० १८६१ में दीक्षा ली थी. वे भी महा प्रतापी थे. उन्होंने ३३ वर्ष तक लगातार अखण्ड एकांतर की. वे सिर्फ तपस्वी ही नहीं थे, परंतु पूर्ण विद्वान् भी थे, स्व परमत के ज्ञाता और समर्थ उपदेशक थे उन्होंने भी जैन शासन का अच्छा उद्योत किया और श्री हुकमीचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति बढ़ाई सं० १६३३ पोष शुक्ल ६ के रोज उनका स्वर्गवास हुआ।

पूज्य श्री उदयसागरजी स्वामी—इन महात्मा का जन्म जोधपुर निवासी ओसवाल गृहस्थ सेठ नथमलजी की पत्नी

नारायणा भार्या श्री जीवु बाई के उदर से सं० १८७६ के पोष माह में हुआ. सं० १८६१ में इनका ब्याह परमोदसाह से किया गया. ब्याह होने के कुछ ही समय पश्चात् उन्हें संसार की असारता का भान होते वैराग्य स्फुरित हुआ, सब सम्बन्ध परित्याग करने की अभिलाषा जागृत हुई परंतु माता पिता कुटुम्बादिको ने दीक्षा लेने की आज्ञा न दी। इसलिये श्रावक व्रत धारण कर साधु का वेष पहन भिक्षाचारी करते ग्रामानुग्राम विचरने लगे. कुछ समय यों देशाटन करने के पश्चात् माता पिता की आज्ञा मिलते ही इन्होंने सं० १६७८ के चेत शुक्ल ११ के रोज पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के सुशिष्य हर्षचंदजी महाराज के पास दीक्षा धारण की और गुरु गम से ज्ञान ग्रहण करने लगे। इनकी स्मरण शक्ति अद्भुत और बुद्धि बल अगाध था। थोड़े ही समय में इन्होंने ज्ञान और चारित्र की अधिक ही उन्नति की, इनकी उपदेश शैली अत्युत्तम थी इसलिये पूज्य श्री जहां २ पधारते वहां २ उनके मुख कमल की वाणी सुनने के लिये स्वमती अन्यमती हिन्दू मुसलमान प्रभृति अधिक संख्या में आते थे. उनकी शारीईरिक सम्पदा अति आकर्षक थी, गौरवर्ण, दीप्त कांति विशाल भाल, प्रकाशित बड़े नैत्र, चंद्र समान मनोहर बदन और तत्वज्ञान सह अमृत समान मिष्ट माधुरी वाणी ये सब श्रोतृ समूह पर जादूसा प्रभाव डालते थे. पूज्य श्री पंजाब में अटक रावल पिंडी तक पधारे थे और उस अंजान मुल्क

से भी अपना प्रभाव दिखाया था. कई राजाओं को सदुपदेश से शिकार और मांस मदिरा छुड़ाई और अहिंसा धर्म की विजय ध्वजा फहराई थी।

पूज्य श्री के आचार विचारः— पूज्य श्री के हृदय की प्रतिच्छाया वर्तमान के उनके साधु हैं 'छिद्रेष्वनर्थी बहुली भवन्ति' मोह, या प्यार में जो लेश मात्र स्वतंत्रता दीजाती है वही स्वतंत्रता फिर स्वच्छंदता के स्वरूप में परिणित होजाती है और जिसका फल भयंकर असह्य और अक्षम्यदोष उत्पन्न करता है. ये कारण प्रत्यक्ष रखकर किसीभी शिष्य को स्वच्छंदी बनने न देते.

भिन्न २ प्रकृति के साधु एकत्रित हो उस सम्प्रदाय को शुद्ध समय की सीमा में रखना सरल कार्य नहीं है। अनंतानुबंधी की चौकड़ी के बंधन में फंसते हुए मुनि को मुक्त करने के लिये वे स्तुत्य प्रयास करते थे। सूत्रों के रहस्य को न्यायपूर्वक यों समझाते थे कि:--

*असंवुडेणं भंते! अणगारे, सिज्झई, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे से केणट्ठेणं भंते! जाव अन्तं करेइ गोयमा! असंवुडे अणगारे आउयवज्जाओ

---

*भावार्थः—गृह भारका त्याग किया परंतु आंतरिक आश्रव द्वार जिसने नहीं रोके ऐसे पाखंड वेशी साधु भवबीजरूप कर्म,

सत्तकम्म पयडिओ सिढिलबंधणबद्धाओ घणियबंधण बद्धाओ पकरेइ रहस्सकालठिईआओ, दीहकालठीइआओ पकरेइ मंदाणु-भावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ अप्पपएसगाओ बहुपएसगाओ पकरेइ······ श्री भगवती श० १ उ० १ इसके अनुसंधान में श्री उत्तराध्ययन से अ १ गाथा ६ वीं कहकर भावार्थ गले उतारते थे कि गुरु की हितशिक्षा प्रत्येक शिष्य को सम्पूर्ण ध्यान से सुनना, विचार करना, मन में ठसाना और उसी अनुसार वर्ताव करना चाहिये. शिष्य के दुर्घृष्ट हृदय की गंभीर भूलों को वार करने के लिये कदाचित् कठिन प्रहार युक्त हित शिक्षा हो तो भी विनीत शिष्य को अपना श्रेय समझ कर वह शांति से श्रवण करना, परंतु तनिक भी कोप या शोक न करना और शुभ विचारों से मन को समझा कर क्षमा धारण करनी चाहिये। व्यवहार और मन से क्षुद्र मनुष्यों का तनिक भी संसर्ग न करना और हास्य क्रीडा आदि प्रसंगसे दूर रहना चाहिये।

परंतु सम्प्रदाय में थोड़े शिथिलाचारियों का समूह घुसा हुआ वे पतली दृष्टि से देख कर मन में सोचने लगे कि, साधु के नाम

प्रकृति, स्थिति, रस घटाने के बदले अधिक बढ़ाते हैं चीकने कर्म बांधते हैं इसलिये अंतरिक रिपुओं से जय प्राप्त करना यही बाह्य त्याग का मुख्य लक्ष होना चाहिये।

से लोगों को ठगना या ठगाने देना या फंसाने देना यह महा पाप अधर्म और निर्बलता है। सम्प्रदाय की यह बेपरवाही आगे गंभीर और भयंकर परिणाम पैदा करेगी.

शास्त्र सत्य कहते हैं कि, इंद्रिय और मनको वश रखना यही आत्मा की पहिचान का सरल और उत्तम उपाय है। मानसिक संयम से पापपुंज नहीं बढ़ता मन विकारी होकर दूषित हुआ कि, मानसिक पाप हो चुका इसलिये साधुधर्म के संरक्षणनिमित्त संयम के नियम योजित किये हैं इस अंकुश को दुःखरूप समझने वालों का दुःखमय हालत से हाल हवाल हो जते हैं अनेक आकर्षणों में फंसाने से भव हार जाते हैं निरंकुश स्वतंत्रता से साधुओं में स्वच्छंदता, कलह और दुःख सिवाय दूसरे परिणाम भाग्य से ही प्राप्त होते हैं।

ऐसे सबल कारणों का दीर्घ दृष्टि से विचारकर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय के कितने एक साधुओं के साथ आहार पानी का सम्बन्ध तोड़ा था। जिसका चेप अभी तक वर्तमान है। चारित्र शिथिलता के चेप का फैलाव रोकने के लिए ऐसे रोगियों के ढूंढ चिकित्सा कर सच्चे रास्ते लगाने का पूज्य श्री का प्रयास कटु काढ़े के सदृश होने से छूट छाट मांगने वाले मुनि नामधारी पूज्य श्री के वैयावृत्यसे भी वंचित होने लगे।

सं० १९५४ के आसोज शुक्ल १५ के व्याख्यान में रतलाम स्थान पर पूज्य श्री उदयसागर जी महाराज ने युवा चार्य पद श्री चौथमलजी महाराज को देना ज़ाहिर किया। श्री संघ ने उसे सहर्ष स्वीकार किया. श्री चौथमलजी महाराज का चातुर्मास जावद था इस लिये चातुर्मास पश्चात् रतलाम से महाराज श्री प्यारचंदजी और महाराज श्री इन्द्रचंदजी प्रभृति चादर लेकर जावद पधारे. सं० १९५४ के मंगसर शुक्ल १३ को जावद में महाराज श्री चौथमलजी को चादर धारण कराई। उस समय महाराज श्री श्रीलालजी वगैरह २१ मुनिराज श्री जावद विराजते थे.

सं० १९५४ के महा शुक्ल १० के रोज रतलाम में पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ, पूज्य श्री का निर्वाण महोत्सव अत्यंत चित्ताकर्षक और चिरस्मरणीय विधिसे हुआ था।

पूज्य श्री चौथमलजी स्वामी:— सं० १९५४ के फाल्गुन बद ४ के रोज रतलाम पधार कर सम्प्रदाय की बागडोर आपने अपने हाथ में ली। पूज्य श्रीने सं० १९०९ चेतसुदी १२ को दीक्षा ली थी पूज्य श्री महाक्रियापात्र और पवित्र साधु थे।

उनकी नेत्रशक्ति क्षीण होगई थी और वृद्धावस्था भी थी। परंतु शरीर की अशक्ति का तनिक भी विचार न कर विहार करते रहते थे. वेजड़ कारण दिखा आजकी तरह थाणपति न रहते

साधुतो फिरतेही अच्छे इस वाक्य को सत्य स चित कर दिखाते थे। पूज्य श्री का सूत्र ज्ञान बढ़ाचढ़ा था। मुंहसे ही व्याख्यान फरमाते थे, क्रिया की ओर भी पूर्ण लक्ष्य था। रातको एक दो दफे उठकर शिष्यों की सार संभाल लेते थे. सम्प्रदाय से अलग हुए साधुओं का अबतक सुधरने की ओर लक्ष्य न देखा तो उनसे आहारपानी का व्यवहार रक्खा ही नहीं।

उपदेशकों के चरित्र और आचरण का प्रभाव समाज पर पड़ता ही है. इस लिये वे भी श्रेष्ठ आचार वाले होने चाहिये। व्याख्यान देनेसे ही उपदेशकों का कर्तव्य इतिश्री तक पहुंच गया ऐसा समझना भूल है। सब दिन भर के उनके आचार विचार और उच्चार में गंभीरता, पापभीरुता, पवित्रता और प्रसन्नता झलकनी चाहिये।

कायदे या नियम कागज़ पर नहीं परंतु व्यवहार में भी लाने चाहियें प्रतिक्षण पापसे बचने की जिज्ञासा जागृत रहे तभी असंख्य आकर्षणों से आत्मा बच सकती है। महात्मा कह गए हैं कि:—

उपदेशकों के भक्तिभाव, श्रद्धा, सत्यप्रवन, और फकीरी वृत्तियों से ही शिष्यों की धार्मिक वृत्तियाँ खिलती हैं। धार्मिक रिवाज़ और संस्कार का जितना विशेष ज्ञान हो उतना ही अच्छा है। चाहे जैसा संकट आजाय, चाहे जैसा लालच अपने पास हो, तो

भी अपने से धर्म न त्यागा जाय, यह खयाल और निश्चय सम्पूर्ण रीतिसे पैठ जाय तभी सफलता समझनी चाहिये ।

धर्म कुछ पांडित्य का विषय नहीं । धर्म बुद्धि गम्य ही क्यों न हो परंतु वह हृदयग्राह्य है, क्योंकि वह श्रद्धा का विषय है । धर्म विहीन नीति शिक्षण भी श्रद्धा के अभाव से पूर्ण असर नहीं कर सका ।

सब मनुष्यों को धर्म की ओर अत्यंत उदार व्यापक और शास्त्रीय शुद्ध खयाल लगाना हो तो धर्म द्वारा ही लगा सकते हैं, हार्दिक इच्छा स्वतः प्रकटित होनी चाहिये । दूसरों के डर या अंकुश का असर कुछ ही समय तक टिक सकता है । आत्मविश्वास के बिना प्रतिज्ञा नहीं निभ सकती आकस्मिक भूलोंका परिणाम को प्रायश्चित्त द्वारा नरम कर सकते हैं जो स्वेच्छा से शुद्धभाव द्वारा प्रायश्चित्त हो गया अल्पश्रम और अल्प त्याग से ही निवृत्ति हो सकती है । अगर ऐसा नहीं किया गया तो आगे क्या २ करना पड़ेगा उसकी कल्पना हृदय में लाते ही देह कंपने लगता है ।

अपने शास्त्रों में हजारों वर्ष पहिले कहा गया है उसी अनुसार महात्मा गांधीजी अभी प्रेम और तपश्चर्या से ही दूसरों पर प्रभाव डाल रहे हैं ।

एक ने दूसरे पर मिथ्या कलंक लगाना, अनर्थ दण्ड सेवन करना, यह जैन नाम को लजाता है, महात्मा गांधीजी की सलाह तो यह है कि, प्रेम से मनाओ, भूलें बताओ, खड्डे खोखलों से बचाओ और उन खड्डों में गिरने वालों का हाथ पकड़ो, दलील से समझाओ ममत्व का नशा उतारकर बात गले उतारो, सत्यमत की प्रबलता से उस वेग को रोको परंतु बलात्कार मत करो ।

समाज की सुव्यवस्था यह साधुओं की पहरेदारी का ही प्रताप परिणाम है । समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षपात से उपरोक्त सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कीर्त्ति ध्वजा पहराती रहेगी ।

खुशामद यह गुप्त विष है । मनुष्य मात्र भूल का पात्र है । भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले एवं कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परंतु पक्षांध हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुन्हा जड़ाने जैसा महापाप है. यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उत्तेजना के समान है । यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर कितना मत भेद उत्पन्न करता है जिसके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखों आगे मौजूद हैं ।

रोगी को विश्वास दे पोल परोल कर मुख्य अंश प्रकट करने

क श्रावक पना निभ सकता है परंतु खास अंश छुपा रोग को असाध्य और जहरीला बनाना महापाप है। इस इंद्रजाल के शिकार होने से बचना श्रावकों का मुख्य धर्म है। धर्म की इज्जत को तिरस्कृत दृष्टि से पददलित करने वालों को इस गुप्त विष को भयंकर भाव से सचेत कर देना चाहिये, सचेत करने वाले अपने इस धर्म को नहीं पालने से धर्मद्रोही हैं—शुद्ध श्रद्धापूर्वक आत्म यज्ञ करने वाले शूरवीर ही शुद्ध संयम के संरक्षण करने का यश प्राप्त करेंगे समाज की बाग डोर ऐसे शूरवीरों के ही करकमलों में शोभा देती हैं कि, जो इस विषैले फंदे से समाज को बचाते हैं।

हिन्दू समाज की ऐसी रचना है कि, प्राचीन काल से ही समाज और गुरु नेता है भोला भारत प्रजा धर्म के नाम से भूलावे में भूल जाता है धर्म अज्ञान वर्ग में भय या संदेह उत्पन्न करता है तब समझदार समाज में श्रद्धा जागृत करता है। हमें पवित्र अपने स्थान निभाने के लिये उस स्थान के योग्य बनना ही पड़ेगा, और समाज श्रद्धापूर्वक मान दे ऐसी योग्यता रखनी ही पड़ेगी.

To err is human, to know that one has erred is super human, to admit and carrect the error and repair wrong is Divine. "भूल हो जाय मनुष्य का स्वभाव है। हम से भूल होगई उसका ज्ञान होना उच्च मनुष्यत्व है परंतु भूल मंजूर

कर उसे सुधारना बुरों का भला कर देना ये दैवी मनुष्य है, दिल की इच्छाएं घमंड से नम्रता में उतरीं कि भूल सुधारने की दृश्य प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ ।

" अपने देशमें समाज राज बल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है । यह अपने समाज की विशेषता है, मनुष्य विषय वासना के अधीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतनी ही उसकी तपश्चर्या होगी, स्वार्थ और विलास की पामरता जिस के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है । ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है ।

कान के कीड़े खिराने वाले निंदक की निंदा न करते उस के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सद्बुद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सफल हो ऐसा प्रयास करना यही सच्ची वीरता, यही हमारे अरिहंत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है ।

आसीद्यथा गुरुमनोहरणे समर्था ।
त्वत्प्रेमवृत्तिरनघा न तथा परेषाम् ॥
रत्ने यथाऽऽदरमतिर्मणिलक्षकाणां
नैवं तु काच शकलेकिरणाकुलेऽपि ॥

शतावधानी पंडित श्री रत्नचन्द्रजी महाराज—मानिक—मोती—हीरा, पन्ना, परखने वाले जौहरी का मन कीमती रत्नों पर जैसा आकर्षित होता है उतना सूर्य के प्रकाशमें प्रकाशित काच के टुकड़े (या इमिटेशन जो सच्चे से भी बाह्य दिखावट में विशेष सुंदर दिखते हैं) के तरफ नहीं आकर्षित होता ।

ॐ

पूज्य श्री श्रीलालजी ।

अध्याय १ ला ।

बाल्य जीवन ।

राजपूताने के पूर्वीय बनास नदी के दक्षिण तट पर टोंक नाम का एक नगर बहुत प्राचीनकाल से बसा हुआ है । जो जयपुर से दक्षिण की ओर ६० मील दूर है । ई० सन् १८१७ में जब प्रख्यात अमीरखां पिंढारी ने राजपूताने में एक नये राज्य की स्थापना की तब उसने राजधानी का शहर बनाया । राजपूताने में सबसे पीछे जो कोई राज्य स्थापित हुआ तो यही राज्य । दो हजार चौरस माइल का इसका विस्तार है । उसका कितना ही भाग राजपूताने में और कितना ही मालवा में है । टोंक के राज्यकर्त्ता अफगान जाति के रोहिला पठान हैं और वे नवाब की पदवी से

पहिचाने जाते हैं। सारे राजपूताने में यह एक ही मुसलमानी राज्य है। चारों ओर ऊँची २ टेकरियों से घिरा हुआ और पुरानी पद्धति का टोंक शहर पुरानी टोंक और नई टोंक ऐसे दो भागों में बंटा हुआ है।

सकड़े बाजार और ऊँचे नीचे रस्ते वाली और बहुत प्राचीन समय से बसी हुई पुरानी टोंक में अपने चरित्र नायक का जन्म हुआ था, इसी कारण से वर्तमान में यह शहर जैन प्रजा में अधिक प्रसिद्ध है। यहां पुरानी टोंक में * क्षत्रिय वंशी परमार जाति से निकली हुई ओसवाल जाति और बम्ब गोत्र में उत्पन्न हुए चुन्नी-लालजी नामक एक सद्गृहस्थ रहते थे। राज्य में एवम् जाति में सेठ चुन्नीलालजी बम्ब की प्रतिष्ठा अधिक थी। स्थावर मलकियत में दो २ तीन २ मंजिल की तीन हवेलियों के सिवाय पुरानी और नई

---

* जैन राजपूत जाति के सम्बन्ध में कितनी ही जानने योग्य ऐतिहासिक बातें कर्नल सर जेम्स टॉड साहब रचित "राजस्थान इतिहास" के हिन्दी के आधार पर नीचे लिखी जाती हैं।

१—चित्तौर के किले में मानसरोवर के अन्दर जो पंवार राजाओं के वक्त का शिलालेख लगा हुआ है उसकी नकल है:—

मानसरोवर राजा मान पंवार (परमार) ने बनाया है। इसके सात सौ वर्ष के बाद उनके कुल के राजा भीम ने शिला-

टोंक में मिलाकर छोटी बड़ी १४ दुकानें थीं। जिसका क्रिाया आता था तथा सरकार में तथा सरकारी फौज में लेनदेन का धंधा था चुन्नीलालजी सेठ प्रमाणिक और धर्मपरायण थे। एक सदगृहस्थ के समस्त योग्य गुणों से अलंकृत थे।

लेख लगाया है और उसी भीम के पुत्र ने मारवाड़ में बहुत से नगर बसाये और उसीके उत्तराधिकारी जैन क्षत्रिय ओसवाल कहलाये हैं।

नोट नं० ५—मालवे के महाराज अवंति या उज्जैन के अधीश्वर राजा भीम की बहुत सी प्रशंसा का वर्णन जैन ग्रन्थों में पाया जाता है। उनके ही एक पुत्र ने मारवाड़ राज्य के अनेक स्थानों में नगर स्थापन किये और लूनी नदी से अरवली शिखर तक स्थल के अनेक स्थानों में उनके द्वारा अनेक नगर स्थापित हुए। किन्तु उन नगरवासियों में से सब ही जैन धर्म में दीक्षित हुए। उनके उत्तराधिकारी लोग इस समय सब में अधिक धनशाली और वाणिज्य व्यवसायी महाजन नाम से विख्यात हैं। वे राजपूत–रक्तधारी होने से सर्वत्र गर्व करते हैं और उनको किसी राजकीय पद पर नियुक्त करने पर वे लोग लेखिनी चलाने के समान स्वच्छंदता से तलवार चलाने में भी समर्थ हैं। भाग पहिला हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ११२७-२७।

चुन्नीलाल सेठ की धर्मपत्नी का नाम चांदकुंवर बाई था। हम चरित्र घटना के संग्रहार्थ पांच दिन तक टोंक में रहे उस समय इन बाई के यशोगान इनके परिचित व्यक्तियों के मुख से सुने उतने विस्तार भय से यहां नहीं लिख सकते। ये बाई पवि-

---

२—रामसिंह जैनधर्मावलम्बी और 'ओस' जाति के हैं। इस ओस जाति की संख्या सब रजवाड़ों में लगभग एक लाख के होगी और सबही अग्निकुल राजपूत वंश में उत्पन्न हुए हैं। इन्होंने बहुत काल पहिले जैन धर्मावलम्बन और मारवाड़ के अन्तर्गत ओसा नामक स्थान में रहना आरम्भ किया था तथा उस स्थान के नामानुसार ही ओसवाल नाम से विख्यात हुए।

अग्निकुल के प्रमार व सोलंकी राजपूतशाखा के लोग ही सबसे पहिले जैनधर्म में दीक्षित हुए थे। भाग पहिला द्वि० खंड अध्याय २६ पृष्ठ ७२४–३५।

भारतवर्ष के ८४ जाति के व्यवसायिओं में ओसवाल गिनती में बहुत ज्यादह तथा विशेष द्रव्यवान हैं। वे प्रायः १ लाख हैं। ये ओसवाल इसलिये कहे जाते हैं कि इनके रहने का पूर्व स्थान ओसिया था। ये सर्व विशुद्ध राजपूत हैं इनमें एक ही समुदाय के नहीं हैं। परन्तु पंवार, सोलंकी, भाटी इत्यादि सब समुदाय हैं।

ज्ञता और पतिव्रता की साक्षात् मूर्त्ति थी। उनका धार्मिक ज्ञान जितना बढ़ा चढ़ा था उतना ही उनका चरित्र भी अत्यन्त विशुद्ध था। इनका पिअर माधवपुर (जयपुर स्टेट) में था। इनके पिता सूरजमलजी और काका * देवबक्षजी देश विख्यात श्रावक थे। देवबक्षजी को २८ सूत्रों का अभ्यास था और सूरजमलजी भी शास्त्र के अच्छे ज्ञाता विवेकी और कर्त्तव्य निष्ठ थे। उन्हीं के ये गुण उनकी पुत्री को प्राप्त थे। दिन में दो वक्त सामायिक प्रतिक्रमण करना, गरीबों को गुप्त दान देना, तपश्चर्या करना, ज्ञानाभ्यास बढ़ाना आदि सत्प्रवृत्तियों से तथा शान्त स्वभाव, चतुराई, विवेक आदि सद्गुणों से चांदकुंवर बाई के प्रति सब का आदर भाव था। चुन्नीलालजी सेठ के बड़े भाई हीरालालजी बम्ब कई वक्त कहते थे कि इनके पुण्य से ही हमारे कुटुम्ब चन्द्र की कला दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी है और इनके इस घर में पांव रखते ही ऋद्धि सिद्धि की भी वृद्धि हुई है।

चांदकुंवर बाई ने सामायिक प्रतिक्रमण तथा कितने ही थोकड़े तो लगन के होने पहिले ही सीख लिये थे। लगन होने के पश्चात् भी

---

* देवबक्षजी के पौत्र लक्ष्मीचन्दजी कि जो वर्तमान में विद्यमान हैं उनने श्रीलालजी को दीक्षा की आज्ञा के निमित्त अपने फुआजी को समझाया था।

आर्याजी के सहवास से उनने धार्मिक-ज्ञान में वृद्धि की। उनके व्रत प्रत्याख्यान चारों स्कन्ध उनकी जिन्दगी के अन्तिम कई वर्षों तक रहे। साधु साध्वियों के प्रति उनका अनुपम पूज्य भाव था। यदि आहार पानी बहराने के समय कदाचित् कुछ असूझता हो जाता तो वे उस दिन आहार न करती थीं सारांश इन सती साध्वी स्त्री का चरित्र अतिशय स्तुतिपात्र था, स्तुतिपात्र ही नहीं परन्तु भक्तिपात्र भी था।

इन निर्मलहृदय रत्नप्रसूता स्त्री के उदर से मांगाबाई नामक एक पुत्री और नाथूलालजी नामक एक पुत्र का प्रसव होने के पश्चात् विक्रम सं० १६२६ के आषाढ मास वद्य १२ को एक पुत्र का जन्म हुआ। जगत् में पुत्र जन्म का असीम आनन्द तो कई माताओं को प्राप्त होता है परन्तु वही माता आनन्द सफल समझती है कि जिसका पुत्र उसके दूध को दिपाता है और कुल को प्रकाशित करता है।

श्रीमती चांदकुंवर बाई ने * शुभ स्वप्न सूचित एक ऐसे पुत्र का प्रसव किया कि जो पवित्रात्मा, धर्मात्मा, महात्मा और वीरात्मा के

---

* श्रीलालजी को माता के गर्भ में उत्पन्न हुए तीन चार महीने बीते थे कि एक समय माजी साहिबा चांदनी में सोई थीं।

सहश विश्व में प्रख्यात हुआ। जबतक जीवित रहे इस पृथ्वी पर चन्द्र की तरह अमृत बर्षाते रहे, शीतलता प्रवाहित करते रहे और अनेक भव्यात्माओं के हृदय-कमल को विकासित करते रहे। जिनका नाम श्रीलाल रक्खा गया। पुत्र के लक्षण पालने में दिखाये, सूर्य के प्रकट होते ही उसकी सुनहरी किरणें ऊंचे से ऊंचे पर्वत के मस्तक पर जा बैठती हैं इसी तरह इस बालक की प्रतिभा ने आप्त जनों के अन्तःकरण में उच्च स्थान प्राप्त किया था। इसकी तेजस्विता, मनोहर वदन, शरीर की भव्याकृति, विशाल भाल, प्रकाशित नेत्र इत्यादि लक्षण स्वाभाविक रीति से ऐसी सूचना देते थे कि यह बालक आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा।

सूर्यास्त हुए थोड़ा ही समय बीता था। उस समय उन्हें स्वप्नावस्था में एक देदीप्यमान कांतिवाला गोला दूर से अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया। थोड़े ही समय में वह बिल्कुल समीप आ पहुंचा। ज्यों २ वह समीप आता गया त्यों २ उसका प्रकाश भी बढ़ता गया। माजी आश्चर्य चकित हो गई प्रकाश के मध्य स्थित कोई मूर्त्ति मानो कुछ कह रही हो ऐसा भास हुआ परन्तु असाधारण प्रकाश से उनके हृदय पर इतना अधिक क्षोभ हुआ कि मूर्त्ति ने क्या कहा उसकी स्मृति न रही धड़कती छाती से वे जग पड़ीं और पति के पास जाकर सब हकीकत निवेदन की।

श्रीलालजी बालक थे तब उनकी माता उन्हें साथ लेकर
ानक में श्रीमोताजी तथा गेंदाजी नामक विदुषी और विशुद्ध
रित्र वाली सतियों के पास शास्त्राध्ययन करने के लिये निरन्तर
या करती थीं। उनके पवित्र संवाद का पवित्र असर उनके हृदय
: बाल्यावस्था से ही गिरने लग गया था। उस समय टोंक में
य श्री हुक्मचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के सुसाधु तपस्वीजी
पन्नालालजी (पूज्य श्रीचौथमलजी के गुरु भाई) तथा गंभीर-
लजी महाराज विराजते थे। अपने पिता के साथ उनके पास भी
ाने का अवसर श्रीलालजी को कभी २ मिलता था। पन्नालालजी
हाराज बड़े आत्मार्थी, सुपात्र, समय के ज्ञाता और विद्वान् साधु
। एक से लगाकर ६१ उपवास तक के थोक उन्होंने किये थे।
न दोनों सत्पुरुषों का सत्समागम श्री श्रीलालजी के जीवन को
त्कर्षाभिमुख करने में महान् आधारभूत हुआ।

बाल्यावस्था से ही साधु और आर्याजी की ओर अप्रतिम
मभाव और अनुपम भक्तिभाव था। जब वे पांच वर्ष के थे तब
ौर बालकों की रम्मत की तरह श्रीलालजी भी ऐसी रम्मत करते
कि कपड़े की झोली बनाते, मिट्टी की कुलड़ियों के पात्र बनाते,
ह पर वस्त्र बांधते, हाथ में शास्त्र के बदले कागज लेते और
याख्यान बांचते ऐसा दृश्य दिखाते थे। इस स्थिति में उन्हें देख-

कर कोई प्रश्न करता कि श्रीजी ! लाड़ी परणोगा के दीक्षा लोगा! तो प्रत्युत्तर में वे कहते कि " मैं तो दीक्षा लऊंगा शा ! " पूर्व जन्म के संस्कार बिना लघुवय से ही ऐसे सुविचारों की स्फुरणा होना अशक्य है । यह खबर उनके पिताजी को मालूम होते ही उन्होंने ऐसा खेल न खेलने को फरमाया और विनीत पुत्र ने फिर से वैसा करना थोड़े वर्षों के लिये परित्याग किया ।

छठे वर्ष के प्रारम्भ में श्रीलालजी को व्यवहारिक शिक्षा देना प्रारम्भ किया गया परन्तु धार्मिक शिक्षा का प्रारम्भ तो पहिले से ही उनकी सुशिक्षिता और कर्त्तव्यपरायणा माता की ओर से हो चुका था । छः वर्ष इतनी कम उम्र में उन्होंने माता के पास से सामायिक प्रतिक्रमण सम्पूर्ण सीख लिया था सिर्फ श्रीलालजी को ही नहीं अपनी तीनों ※ सन्तानों को इसी तरह धार्मिक अभ्यास

※ श्रीजी के ज्येष्ठ भ्राता श्रीयुत नाथूलालजी बम्ब अभी वर्तमान हैं । उनके कुटुम्ब में आज भी कितना धर्मानुराग है उसका किंचित् परिचय देना आवश्यक है । सं० १९७७ के द्वितीय श्रावण वद्य ११ के रोज स्व० पूज्य श्रीजी की जीवन घटना के संग्रहार्थ हम टोंक गये थे और श्रीयुत नाथूलालजी बम्ब के यहां पांच दिन तक रहे थे । वे रात दिन हमारे पास बैठकर सोच २ कर हमें

कराने के पश्चात् नीति अर्थात् सामान्य धर्म की उच्च शिक्षा चांदकुंवर बाई ने दी थी। " एक अच्छी माता सौ शिक्षकों की आवश्यकता पूरती है "। इस कहावत को उन्होंने चरितार्थ कर दिया था। आर्यावर्त ऐसी माताओं के पदरज से सदा पवित्र बना रहे ऐसी हमारी भावना है।

टोंक में सरकारी एवं खानगी दोनों प्रकार के स्कूल थे परन्तु खानगी स्कूलों की शिक्षा विशेष व्यवहारोपयोगी समझ श्रीलालजी

सब विगत लिखाते थे। उनके पास भी कई मुख्य २ बातें विगतवार लिखी थीं।

श्रीयुत नाथूलालजी एक आदर्श श्रावक हैं। उन्होंने चारों स्कंध उठाये हैं तथा और भी कई व्रत प्रत्याख्यान लिये हैं। रोज तीन सामायिक करने का उनके नियम है। वे विवेकी, धर्मप्रेमी और मुलायम (मृदु) स्वभाव वाले हैं। ५७ वर्ष की उम्र होते भी वे एक युवा की तरह कार्य करते हैं। उनके चार पुत्र हैं, बड़े पुत्र माणिकलालजी भी वैसे ही सुयोग्य हैं। श्रीयुत नाथूलालजी के पुत्र पौत्रों प्रभृति सारे कुटुम्ब का धर्मानुराग प्रशंसनीय है। टोंक में उनकी कपड़े की दूकान बहुत अच्छी चलती है तो भी सेठ नाथूलालजी इस व्यापार से धर्म व्यापार में विशेष लक्ष देते हैं।

को हिन्दी सिखाने के लिये पंडित मूलचन्दजी नामक एक ब्राह्मण अध्यापक के स्कूल में रक्खा और उर्दू शिक्षार्थ हाजी अब्दुल रहीम के स्कूल में भेजना प्रारम्भ किया। विद्याभ्यास की ओर उनकी स्वाभाविक अभिरुचि बालवय से ही थी। इससे अपने सहाध्यायियों की स्पर्धा में श्रीलालजी ने आगे नम्बर मिला अपने शिक्षक का प्रेम सम्पादन किया। उनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि उनके शिक्षकों को बड़ा आश्चर्य होता था।

स्कूल में सत्यवक्ता, सरल स्वभावी और प्रामाणिक विद्यार्थी की तरह इनकी कीर्त्ति थी। विद्यागुरुओं के वे प्रीतिपात्र और विश्वासी थे। श्रीलालजी के उच्च गुणों से मुग्ध हुए सहाध्यायी उनसे पुर्ण प्रेम रखते थे और सम्मान देते थे। इतना ही नहीं परन्तु उनके नाना गुणों की सब कोई विशुद्धभाव से श्लाघा करते थे। अपने विद्यागुरु की ओर श्रीलालजी का प्रेमभाव भी प्रसंशापात्र था और शाला छोड़ने के पश्चात् भी वैसा ही प्रेम कायम था इसका एक उदाहरण यहां देते हैं।

सं० १६४४ में अपनी अठारह वर्ष की अवस्था में जब उन्होंने अपने मित्र गुजरमलजी पोरवाल के साथ स्वयं दीक्षा अंगीकृत की तब उन्हें प्रायः सात तोले की एक सोने की कंठी अध्यापक महाशय को इनायत की थी।

श्रीलालजी स्कूल में हिन्दी तथा उर्दू अभ्यास करते थे और नका धार्मिक अभ्यास भी शुरू ही था तो भी आश्चर्य यह था के वे स्कूल में हमेशा उच्च नम्बर रखते थे और अभ्यास में भी बसे आगे रहते थे। तपस्वीजी श्रीपन्नालालजी तथा गम्भीरमलजी हाराज के पास निवृत्ति के समय वे जाते और पच्चीस बोल, वतत्व, लघुदंड, गतागत, गुणस्थान, क्रमारोह आदि अनेक विषय था साधु का प्रतिक्रमण प्रभृति कंठस्थ करते थे। धार्मिक अभ्यास रने में उनके एक मित्र बच्छराजजी पोरवाल कि जो अभी विद्य-मान हैं उनके सहाध्यायी थे। दोनों साथ २ अभ्यास करते थे। श्रीयुत बच्छराजजी कहते हैं कि जब हम साधु का प्रतिक्रमण सीखते थे तब महाराज मुझे जो पाठ देते उसे सिर्फ सुनकर ही श्रीलालजी कंठस्थ कर लेते थे और मुझे वही पाठ बारंबार रटना पड़ता था इतनी अधिक उनकी स्मरणशक्ति तीव्र थी।

श्रीलालजी का शरीर नीरोगी और सुदृढ था। जन्म से ही वे उनके दूसरे भाइयों से अधिक मजबूत थे। सहन शीलता, निर्भयता साहसिकवृत्ति दृढनिश्चय किया हुआ कार्य पूर्ण करने की उत्कंठा उत्साह और सत्याग्रह इत्यादि गुण बाल्यावस्था से ही उनमें प्रका-शित थे, शुक्ल पक्ष के चन्द्रकी तरह उनकी बुद्धि के साथ उपर्युक्त गुणों का प्रकाश भी बढता गया जिसके अनेकानेक

उदाहरण इन महापुरुष के जीवनचरित्र में स्थान स्थान पर दृश्यमान हैं।

श्रीलालजी का स्वभाव बहुतही कोमल और प्रेम पूर्ण होने से उनके बालस्नेहियों की संख्या भी अधिक थी। उनके साथ इनका बर्ताव बड़ाही उदार था। श्रीलालजी के उत्तम गुणोंकी छाप मित्रसमूह पर जादूसा असर करती थी बच्छराजजी और गुजरमलजी पोरवाल ये दोनों उनके खास मित्र थे। श्रीलालजी के वैराग्यसे इन दोनों मित्रों के हृदय पट पर गहरी छाप लगी थी और इसीसे उन्होंनेभी उनके साथ संसार परित्याग कर आत्मोन्नति साधन करने का दृढ संकल्प किया था, परन्तु पीछे से बच्छराजजी को आज्ञा न मिलनेसे उसी तरह संयोगों की प्रतिकूलता होने से दीक्षा न ले सके और गुजरमलजी ने श्रीलालजी के साथ ही दीक्षा ली। श्रीलालजी के प्रति इनका अत्यन्त पूज्यभाव था।

स्कूल के श्रीलालजी के सहाध्यायी उन्हें इतना चाहते थे कि जब वे स्कूल छोड़कर अलग हुए तब आंखों से अश्रु लाकर रुदन करने लगे थे. उनके मित्र उनका वियोग सहन नहीं कर सके थे. उनकी सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, और प्रेम मय स्वभाव से उनके मित्रों का हृदय द्रवीभूत होता था। परन्तु उन्हें विशेषतः वशीभूत करने वाला कारण उनका क्षमागुण था. श्रीलालजीका हृदय इतना

अधिक कोमल था कि वे किसीका दिल दुखे ऐसा एक शब्द भी कहते डरते थे और कचित् उनके कोई शब्द या किसी प्रवृत्ति से दूसरों का दिल दुख गया ऐसा भाव होते ही तत्काल जाकर उनसे क्षमा प्रार्थी होते थे, ये श्लाघ्य सद्‌गुण उनकी वीर माता की तरफ से उन्हें प्राप्त हुए थे। श्रीलालजी की ऐसी उदार प्रवृत्ति से उनका किसीके साथ वैर भाव न था. शत्रुता थी तो सिर्फ मनुष्य के शरीरमें मित्रकी तरह रहते हुए शत्रुका काम करने वाले आलस्य रूपी शत्रु से थी—श्रीलालजी का क्षमागुण उनकी महत्ता बढाता था, इतनाही नहीं किंतु ऊपर कहे अनुसार वशीकरण मंत्रकी आवश्यकता भी पूरता था। इस उत्तम गुण द्वारा वे परिचित व्यक्तियों पर विजय प्राप्त कर सकते थे। (क्षमावशीकृते लोके, क्षमया किं न-सिध्यति !) अर्थात् यह संसार क्षमा द्वारा वशी है अतः क्षमा द्वारा क्या सिद्ध नहीं हो सकता ? अर्थात् सब मनःकामना सिद्ध होती है।

सं. १६३२ के भाद्र शुक्ल ५ के रोज जयपुर अंतर्गत टुनी नामक ग्राम निवासी बालावक्सजी नाम के सुश्रावक की पुत्री सानकुंवर बाई के साथ श्रीलालजी का सम्बन्ध किया गया। उस समय श्रीलालजी की उम्र ६ वर्ष की और मानकुंवर बाई की उम्र ४ वर्ष की थी।

अध्याय २रा

विवाह और विरक्तता

सं १६३५ में श्रीलालजी ने शाली छोडी और अब धार्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए अधिक उद्यम करने लगे। इसी वर्ष अर्थात् सं १६३६ के आषाढ़ माह में इनके पिता सेठ चुन्नीलालजी स्वर्ग पधारे पिताजी के स्वर्गवास के पांच मास पश्चात् सं १६३६ के मार्गशीर्ष वद्य २ को श्रीलालजी का व्याह हुआ। उस समय इनकी उम्र १० वर्ष की पूरी होकर ११ वां वर्ष लगा था और इनकी भार्याको ६ वां वर्ष लगा था। राजपूतानेमें बाललग्नका अत्यन्त हानिकारक रिवाज आज से भी उस समय अधिक प्रचलित था इस प्रथा को मिटाने के लिए श्रीलालजी ने दीक्षित हुए पश्चात् सतत उपदेश दिया। जिसका कुछ ही परिणाम आज जैनियों में दृष्टिगोचर होता है।

श्रीलालजी की बरात टोंक से दुनी आई। उस समय प्राकृतिक किसी अदृश्य अकल आकर्षण के प्रभाव से उनके परमोपकारी धर्मगुरु तपस्वीजी श्रीपन्नालालजी तथा गंभीरमलजी महाराज भी इधर उधर से विहार करते २ दुनी पधार गए। शुभ संवाद

[सु]नते ही वरराज के रोमांच विकसित होगये और अति आतुरता [के] साथ गुरुश्री के दर्शनार्थ उपाश्रय गए।

मारवाड़ में वरराजा के हाथ मदनफल के साथ दूसरी भी चीजें [ए]क वस्त्र में लपेट कर बांधने की प्रथा प्रचलित है उसमें राई के [दा]ने भी होते हैं राई सचेत होने से साधु मुनिराजों का सचेत [व]स्तु सहित संघट्टा नहीं कर सक्ते तो भी भक्ति के आवेश में आये [हु]ए श्रीलालजी का हृदय गुरु के चरण स्पर्श करने का विवेक न [त्]याग सका। वरराज ने सचेत वस्तु सहित अपने गुरु के चरण कमल का स्पर्श किया इस अपराध (!) के कारण साथ वाले श्रावक भाई एक के पश्चात् एक इन्हें उपालंभ देने लगे, तब तपस्वीजी महाराज ने कहा कि आप इनके भक्तिभाव, धर्मप्रेम और उत्साह की ओर तनिक ध्यान देओ और वरराज को बिल्कुल घबरा ही [म]त डालो। इस प्रकार लोगों को उपदेश दे शांत किये और वरराज [क]ो सम्बोधन कर कुछ बोधप्रद बचन कहे। इन वचनों ने श्रीजी [क]े हृदय पट पर जादू सा असर उत्पन्न किया।

श्रीलालजी के लग्न समय चुन्नीलालजी के ज्येष्ठ भ्राता हीरा-[ल]ालजी तथा श्रीलालजी के ज्येष्ठ बन्धु नाथूलालजी प्रभृति कुटुम्बी-[ज]न आनन्दोत्सव में लीन थे। उनके हृदय आनन्द में मग्न थे, [प]र श्रीलालजी के हृदयकमल पर उदासीनता छा रही थी। पूर्व

जन्म के शुभ संस्कारों के प्रभाव से बालवय में ही वैराग्य के
बीज अंकुरित हुए थे और जिन वाणीरूपी अमृत जल का बार
सींचन होने से अब वह वैराग्य वृक्ष विशेष पल्लवित हो बढ़ गया
और उसका मूल भी गहरा पैठ गया था तो भी अनिच्छा से बड़ों
की आज्ञा चुप रह कर शिरोधार्य करते रहे। उनकी यह प्रवृत्ति
शायद पाठकों को अरुचि कर होगी और यही प्रश्न मन में उठेगा
कि व्याह न करना ही क्या बुरा था ? परन्तु कर्म के अचल कायदे
के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है और प्राकृतिक सर्व कृतियां
सर्वदा हेतुयुक्त ही होती हैं। श्रीमती मानकुंवर बाई के श्रेयस् का
मार्ग भी इसी प्रकार प्रकट होना विधि ने निर्माण किया होगा।
श्रीमती को श्रीमती चांदकुंवर बाई जैसी सुशिक्षिता सास के पास
से उत्तम उपदेश (शिक्षा) सम्पादन करने का सुयोग प्राप्त हुआ
और पवित्र जीवन व्यतीत कर दीक्षिता हो छः वर्ष तक संयम
पाल पति से पहिले स्वर्ग में पधारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह
भी इसी प्रवृत्ति से परिणाम हुआ ऐसा अनुमान करना अनुचित है
ऐसा कोई कह सकेगा ? हां ! श्रीलालजी का हृदय उस समय
रंग से रंगा हुआ था और ज्ञानाभ्यास की उन्हें अपरिमित पिपासा
थी यह बात निर्विवाद है परन्तु दीक्षा लेने का दृढ निश्चय उस
समय था या नहीं यह निश्चयात्मक रीति से नहीं कह सकते।

लग्न के समय मानकुंवर बाई की वय बहुत छोटी अर्थात् आठ नौ वर्ष की थी। इसलिये वे उसी समय पिअर गई और तीन वर्ष तक वे पिअर में ही रहीं। मारवाड़ में प्रथा है कि योग्य उमर होने के पश्चात् गोना देते हैं परन्तु जो लग्नादि कोई प्रसंग श्वसुर-गृह में हो तो थोड़े दिन के लिये नववधू को बुला लेते हैं। परन्तु श्रीलालजी के लग्न हुए पश्चात् ऐसा कोई खास अवसर न आया जिससे मानकुंवर बाई तीन वर्ष पितृगृह में ही रहीं।

इधर श्रीलालजी का वैराग्य बढ़ता ही गया। संसार पर अरुचि हुई। व्यापारादि में उनका चित्त न लगता। ज्ञानाध्ययन में सत्समागम में और धर्मध्यान करने में ही वे निरन्तर दत्तचित्त रहने लगे। तपस्वीजी पन्नालालजी तथा गम्भीरमलजी के सत्संग और सदुपदेश का इनके चित्त पर भारी प्रभाव गिरा। उनके पास शास्त्राध्ययन करने में ही वे अपने समय का सदुपयोग करने लगे।

श्रीजी बारह वर्ष के थे तब एक दिन वे सामायिक व्रत कर मुनि श्रीगंभीरमलजी का व्याख्यान प्रेमपूर्वक सुन रहे थे इतने में बीकानेर निवासी श्रीयुत चुन्नीलालजी डागा कि, जो रतलाम वाले सेठ पुनमचन्दजी दीपचन्दजी की टोंक की दुकान पर मुनीम थे व्याख्यान में आये। चुन्नीलालजी शास्त्र के ज्ञाता, उत्पात, बुद्धि वाले विद्वान् और वयोवृद्ध श्रावक थे। सामुद्रिक और ज्योतिष-

शास्त्र में भी उनका ज्ञान प्रशंसनीय था। वे भी श्रीजी की पंक्ति में ही सामायिक करके बैठे थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि श्रीलालजी पर पड़ी। श्रीजी के शारीरिक लक्षण को बार २ निरखने लगे। व्याख्यान पूर्ण होने पश्चात् अपनी कोठो पर गए और भोजनादि से निवृत्त हो दुकान पर आये। थोड़े समय पश्चात् हीरालालजी कुछ भी कार्यवशात् चुन्नीलालजी डागा की दुकान पर गए, तब चुन्नीलालजी डागा हीरालालजी से कहने लगे कि " श्रीलाल आज प्रातःकाल व्याख्यान में मेरे पास ही बैठा था। उसके शारीरिक लक्षण मैंने तपास कर देखे। मुझे आश्चर्य होता है कि यह तुम्हारे घर में गोदड़ी में गोरख क्यों? यह कोई साधारण मनुष्य नहीं। परन्तु बड़ा संस्कारी जीव है। सामुद्रिक शास्त्र सच्चा हो और मेरे गुरु की ओर से मिली हुई प्रसादी सच्ची हो तो मैं छाती ठोककर कहता हूं कि यह तुम्हारा भतीजा आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा। जहां तक मेरी बुद्धि पहुंच सकी वहां तक मैंने गहन विचार किया तो मैंने यही सार निकाला कि यह रकम तुम्हारे घर में रहना मुश्किल है। " श्रीयुत हीरालालजी तो ये शब्द सुनकर स्तब्ध ही हो गए।

कई समय श्रीजी शहर के बाहर निकलकर पास के पर्वतों पर चले जाते और वहां घंटों ठहरते। वहां के नैसर्गिक दृश्य और

मेवाड़ के नामदार महाराणा श्री के मुख्य सलाहकार और पूज्यश्री का परम भक्त श्रीमान् कोठारीजी श्री बलवंत-सिंहजी साहिब, श्री उदयपुर.

ाास्त्र में भी उनका ज्ञान प्रशंसनीय था। वे भी श्रीजी की पंक्ति में ही सामायिक करके बैठे थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि श्रीलालजी पर पड़ी। श्रीजी के शारीरिक लक्षण को बार २ निरखने लगे। व्याख्यान पूर्ण होने पश्चात् आपनी कोठी पर गए और भोजनादि से निवृत्त हो दुकान पर आये। थोड़े समय पश्चात् हीरालालजी सुत्र भी कार्यवशात् चुन्नीलालजी डागा की दुकान पर गए, तब चुन्नीलालजी डागा हीरालालजी से कहने लगे कि " श्रीलाल आज प्रातःकाल व्याख्यान में मेरे पास ही बैठा था। उसके शारीरिक लक्षण मैंने तपास कर देखे। मुझे आश्चर्य होता है कि यह तुम्हारे घर में गोदड़ी में गोरख क्यों? यह कोई साधारण मनुष्य नहीं। परन्तु बड़ा संस्कारी जीव है। सामुद्रिक शास्त्र सच्चा हो और मेरे गुरु की ओर से मिली हुई प्रसादी सच्ची हो तो मैं छाती ठोककर कहता हूं कि यह तुम्हारा भतीजा आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा। जहां तक मेरी बुद्धि पहुंच सकी वहां तक मैंने गहन विचार किया तो मैंने यही सार निकाला कि यह रकम तुम्हारे घर में रहना मुश्किल है।" श्रीयुत हीरालालजी तो ये शब्द सुनकर स्तब्ध ही हो गए।

कई समय श्रीजी शहर के बाहर निकलकर पास के पर्वतों पर चले जाते और वहां घंटों ठहरते। वहां के नैसर्गिक दृश्य और

प्राकृतिक अपार लीला देखते २ मस्तिष्क में एक के पश्चात् एक नये २ विचार तरंगें लाते। वहां पर कोई २ समय तो तत्व चिंतन में ऐसे निमग्न हो जाते कि कितना समय हुआ यह भाव भी नहीं रहता। श्रीजी कहा करते कि पर्वत पर का निवास मुझे बड़ा भला लगता था। घर में भी वे अपनी तीन मंज़िल वाली ऊंची हवेली में * चांदनी पर विशेषतः अपनी बैठक रखते। शहर के बिल्कुल समीप नेत्रों को परमोत्साह देने वाली पर्वतश्रेणियां यहां से भी दृष्टिगोचर होती थीं। टोंक के समीप की ऊंची ऐतिहासिक रसिया की टेकरी मानो तत्ववेत्ताओं का सिंहासन हो ऐसा आभास दिखाती और अपनी पीठ पर आराम लेने के वास्ते श्रीजी को पुनः २ आमन्त्रित करती हुई मालूम होती थी। श्रीजी भी इस आमन्त्रण को पुनः २ स्वीकारते और उत्साह से उसके उत्तुंग शृंग पर चढ़ते। आसपास का अनुपम सृष्टिसौंदर्य उनके तप्त मस्तिष्क को शांति देता। विशाल वृक्षों के पल्लव पंखे का काम कर आतिथ्य धर्म बजाते, कोयलों की मीठी कुहुक और मयूरों का माधुर्य केकारव रूपी संगीत आगत मिहमान का मनोरंजन करते, परिमल फैलाता हुआ ठंडा स्वच्छ समीर चारों ओर फैली हुई अपूर्व शान्ति और प्राकृतिक अद्भुत कलाओं का प्रदर्शन

---

* देखो इनके मकान का चित्र।

याकर्ता त्यांना एकांगावर संसारां ओळखलीं.

ाकृतिक अपार लीला देखते २ मस्तिष्क में एक के पश्चात् एक नये २ विचार तरंगें लाते। वहां पर कोई २ समय तो तत्व चिंतन में ऐसे निमग्न हो जाते कि कितना समय हुआ यह भाव भी नहीं रहता। श्रीजी कहा करते कि पर्वत पर का निवास मुझे बड़ा भला लगता था। घर में भी वे अपनी तीन मंजिल वाली ऊंची हवेली में * चांदनी पर विशेषतः अपनी बैठक रखते। शहर के बिल्कुल समीप नेत्रों को परमोत्साह देने वाली पर्वतश्रेणियां यहां से भी दृष्टिगोचर होती थीं। टोंक के समीप की ऊंची ऐतिहासिक रसिया की टेकरी मानो तत्ववेत्ताओं का सिंहासन हो ऐसा आभास दिखाती और अपनी पीठ पर आराम लेने के वास्ते श्रीजी को पुनः २ आमन्त्रित करती हुई मालूम होती थी। श्रीजी भी इस आमन्त्रण को पुनः २ स्वीकारते और उत्साह से उसके उत्तुंग शृंग पर चढ़ते। आसपास का अनुपम सृष्टिसौंदर्य उनके तप्त मस्तिष्क को शांति देता। विशाल वृक्षों के पल्लव पंखे का काम कर आतिथ्य धर्म बजाते, कोयलों की मीठी कुहुक और मयूरों का माधुर्य केकारव रूपी संगीत आगत मिहमान का मनोरंजन करते, परिमल फैलाता हुआ ठंडा स्वच्छ समीर चारों ओर फैली हुई अपूर्व शान्ति और प्राकृतिक अद्भुत कलाओं का प्रदर्शन

---

* देखो इनके मकान का चित्र।

श्रमित मगज को तर कर देने में परस्पर स्पर्द्धा करते थे। आबू से उत्पन्न और अरवली तथा उदयपुर * के तालाब का पानी पीकर पुष्ट हुआ बनास नामक विशाल सरित्प्रवाह अनेक आश्रितों को शान्ति देता। अपने उभय तट पर खड़े आम्रादि वृक्षों को पोषता और परोपकार परायण जीवन बिताने का अमूल्य बोधपाठ सिखाता, धीमी गति से बहता था। आम्रवृक्ष फल आने पर अधिक नीचे झुक विनय का पाठ सिखाते और अपने मिष्ट फलों द्वारा दुनियां में परमार्थ बुद्धि की प्रभावना करने को ही उत्पन्न हुए हों ऐसी प्रतीति दिलाते थे। एक बाजू पर लगे हुए बट वृक्ष पर दृष्टि गिरते ही यह सूचना मिलती थी कि राई जैसे बीज से ऐसी बड़ी वस्तु हो जाती है। संसार में जरा फंसे तो अंगुली पकड़ते पहुंचा पकड़ेंगे।

संसार में फंसते हुए को बचाने का उपदेश देने वाले वट वृक्ष का आभार मानते। श्रीजी के तात्विक विचार भावी जीवन की इमारत की नींव दृढ करते थे। कठिन पत्थरों से टकरा कर आवाज करने वाली सरिता के तट पर रसेन्द्रिय की लोलुपता के कारण देह

---

* उदयपुर के सरोवर से निकली हुई बडच नदी बनास में जा मिलती है।

को भोग दी हुई तड़फती मछलियां कदाचित् उनके दृष्टिगत होतीं तब इन्द्रियों के वश न करने वाले विचारों को पुष्टि मिलती थी।

सूर्यास्त पहिले पहुंचने की तेजी में नीचे उतरते सामने ही फूल झाड़ दिखते, फैला हुआ पराग मगज को तर करता, परन्तु फूटे हुए अंकुर, खिले हुई कलियां, फूले हुए फूल और नीचे गिरे हुए, मिट्टी में मिले कुम्हलाये हुए पुष्प जीवन की बाल, युवा, प्रौढा और वृद्धावस्था तथा जीवन मृत्यु का प्रत्यक्ष चित्र खड़ा करते और श्रीजी प्रकृति की समस्त कलाएं देखते, पास के प[illegible] बैठ जाते थे। प्रत्येक पत्थर, प्रत्येक पान और भूविहारी [illegible], मानो स्वार्थमय और परिवर्तनशील संसार का नाटक कर[illegible] हों ऐसा मालूम होता था। समीप में बहते हुए झरने को मानो जीभ आई हो उस तरह पत्थर के साथ का विवाद इस नाटक में संगीत का कार्यकर्त्ता था "जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि" इस नैसर्गिक नियमानुसार ये सब दृश्य और सब घटनाएं श्रीजी को वैराग्य की ही शिक्षा देती थीं। कती थीं

प्रकृति की रचनाओं ने मस्तिष्क के परमाणुओं पर इतनी प्रबल सत्ता जमा ली थी कि राह में भी वे ही विचार स्फुरित होते रहते थे।

"सुशोभित ने सुगंधी छे छता कांटा गुलाबे छे,
पूरा प्रेमी पपैयाने, तृषातुर केम राखे छे !
मनोहर कंठनी कोमल करी कां तेहने काली ?
हलाहल झेर छे जेमां सफेदी सोमले मूकी !
रुडो रजनी तणों राजा, कलंकित चन्द्र कां कीधो,
बनाल्यों केम क्षयरोगी ? अरे अपवाद कां दीधो !

मणिकांत

भ्राते दिलि की अमूल्य शिक्षा से श्रीजी के हृदय में वृद्धि पाता हुआ वैराग्य भाव उनकी कोमलता और सत्यप्रियता के कारण वचन और व्यवहार में भी व्यक्त होने लगा। केवल मित्रों से ही नहीं परन्तु अब तो माता और भ्राता के समक्ष भी मानवजीवन की दुर्लभता, संसार की असारता और साधु जीवन की श्रेष्ठता इस वश आशय के वाक्य श्रीजी के मुखारबिंद से पुनः २ निकलने लगे।

गृहकार्य में तनिक भी ध्यान न देते केवल सत्समागम ज्ञानाध्ययन और एकान्तवास में ही वे समय बिताने लगे।

श्रीलालजी की यह सब प्रवृत्ति और संसार की ओर से उदासीन वृत्ति देख उनकी माता प्रभृति सम्बन्धीजन के चित्त चिन्ता ग्रस्त हुए। जो माता अपने पुत्र का धर्म पर अति अनुराग देखकर

प्रथम आल्हादित होती थी, वही माता पुत्र के वैराग्यमय वचनामृत भी आज सुनना नहीं चाहती। उनका धर्ममय व्यवहार उन्हें अति अरुचिकर—अस्वस्थकर मालूम होने लगा। साधु साध्वी की सेवा शुश्रूषा तथा उनकी सत्संगति में रहना ही जिसने अपना कर्त्तव्य बना लिया है वही साध्वी स्त्री सांसारिक मोह के कारण अपने पुत्र का साधुओं के सत्संग में रहना नहीं देख सकती। उनका अन्तःकरण उनका सत्संग छुड़ाना चाहता है। सांसारिक प्रेम गांठ उनके मन में घोटाला किया करती है परन्तु वे अपने अभिप्रायों को स्पष्ट शब्दों में पुत्र के सामने व्यक्त नहीं कर सकती थीं। अहा! यह संसार के राग का कितना अधिक प्राबल्य है।

अध्यापक गेटसे के किये हुए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि:— सारी वृत्तियां पुष्टिकारक रासायनिकतत्व उत्पन्न करती हैं। शरीर के परमाणुओं को शक्ति उत्पन्न करने के लिये उत्तेजित करती रहती हैं। क्रोध, घृणा और दूसरी दुर्वृत्तियां शरीर में हानिकारक मिश्रण बनावट उत्पन्न करती हैं जिसमें से कितने ही अत्यन्त जहरीले होते हैं। प्रत्येक दुर्वृत्ति शरीर में रासायनिक हेरफेर करती है। मन में उत्पन्न हर एक विचार मस्तिष्क के परमाणुओं की रचना में हेरफेर करते हैं और यह परिवर्तन कुछ न कुछ अंश में स्थित ही रहता है।

माता और भ्राता इत्यादि कुटुम्बी जनों को इस समय ... एक ही विचार आश्वासन देता था। वे ऐसा मानते थे कि, इनकी ... बहु के यहां आने पर इनके विचारों में परिवर्तन हो जायगा। इसी आशा में वे योंही दिन विताने लगे।

आशा यही रागपाश में फंसे हुए प्राणियों की प्राणदायिनी बूटी है। यह मनुष्य के मानसिक प्रदेश में प्रविष्ट हो भविष्य के लिये नई २ रम्य इमारतें चुनती है और आश्रितों को आश्वासन देती रहती है।

सं० १६३६ में श्रीजी की धर्मपत्नी मानकुंवर वाई को दूनी से गोना ले टोंक ले आये, उस समय उनकी उम्र १२-१३ वर्ष की थी। पुत्रवधू के आगमन से सास का हृदय आनन्द से उभरा गया और उन्हें उनके विनयादि गुण और योग्यता देखकर तो अपनी आशा सफल होने के संकेत मालूम हुए। श्रीजी के सहाध्यायी मित्र भी उनकी परीक्षा करना चाहते थे कि, श्रीजी का वैराग्य पतंग के रंग जैसा क्षणिक है या मजीठ के रंग जैसा है। इस परीक्षा का क्या परिणाम होता है तथा श्रीजी के कुटुम्बादिक जनों की आशा कितने अंश तक सफल होती है यह अब देखना है।

श्रीजी ने कई वचनामृत जेब में रखने की छोटी पुस्तिका में

लिये थे उनमें से नीचे के वचनामृत का स्मरण वे बारम्बार करते थे।

प्रियास्नेहो यस्मिन्निगडसदृशो यामिकभटो
यमः स्वीयो वर्गो धनमभिनवं बन्धनमिव ।
सदाऽमेध्यापूर्णं व्यसनबिलसंसर्गविषमं
भवः कारागेहं तदिह न रतिः क्वापि विदुषाम् ॥

भावार्थ—संसार में स्त्रियों का स्नेह श्रृंखला के बंधन जैसा या भटकते हुए गोधे जैसा है। अपना कुटुम्बी वर्ग यमराज के समान, लक्ष्मी नई जात की बेड़ी के समान है और संसार अपवित्र वस्तुओं से लीन दुःखदाई दीनों के संसर्ग जैसा भयंकर है। यों संसार यह सचमुच काराग्रह ही है और इसीलिये विद्वान् मनुष्यों की प्रीति इसके किसी स्थल पर भी नहीं नजर आती।

अध्याय ३ रा।

भीषण प्रतिज्ञा।

श्रीजी नित्य की तरह अपने परोपकारी गुरुवर्य का व्याख्या आज भी प्रेमपूर्वक सुन रहे हैं। वीर प्रभु की अमृत मय वाणी पान से श्रोताजनों के हृदय भी आनंद से भलकने लगते हैं व्याख्यान में आज ब्रह्मचर्य का विषय है। ब्रह्मचर्य सब सद्गु का नायक है, ब्रह्मचर्य स्वर्ग मोक्ष का दायक है, ब्रह्मचारी भगव के समान है, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और बड़े चक्रवर्ती राजा भी ब्रह्मचारी के चरण कमल में सिर झुकाते और उनकी पूजा करते हैं इत्यादि सार से भरी हुई सूत्र की गाथ एकके पश्चात् एक पढ़ी जाती है और रहस्य समझाया जाता है। बीच २ में नेमनाथ, राजेमती, जम्बू कुंवार विजय सेठ, विजयारानी इत्यादि आदर्श ब्रह्मचारियों के दृष्टान्त भी दिये जाते हैं और उनके यशोगान गाये जाते हैं।

एक ब्रह्मचारी पूज्य पुरुष के मुखारविन्द से ब्रह्मचर्य धर्म इस प्रकार अपार महिमा सुन श्रीजी के हृदय सागर में इच्छा की उमंगें उठने लगीं, तरंगों से क्षुभित महासागर की तरह उनके

[अं]तःकरण विचारतरंगों से भर गया और व्याख्यान पूर्ण होते ही [खा]नपान की परवाह त्याग अपनी पूर्व परिचित-प्रिय टेकरी की ओर [प्र]याण किया, वहां एकांत में एक शिला पट्ट पर बैठ कर वे [वि]चार करने लगे " एक छोटी बाल वय की सुकुमार कन्या का [हा]थ पकड़कर मैं यहां ले आया हूं, मुझे समझाते हैं कि उनका भव [बि]गाड़ना महापाप है तो जम्बूकुमार का मोक्ष होना असंभव है [ती]र्थंकर पद प्राप्त श्रीनेमनाथ भगवान् ने भी ऐसा क्यों किया ? [मे]रे हृदय में उस पर दया है, अनुकम्पा है। मेरे संसार त्यागने से [उन्]हें कितना महान् कष्ट होगा यह सब मैं जानता हूं, परन्तु एक ही [व्]यक्ति की दया के कारण अनंत पुण्योदय से प्राप्त और अनंत [भ]व की भ्रमणता से मुक्त करने की सामर्थ रखने वाला यह मनुष्य [ज]न्म कि जो देवों को भी दुर्लभ है मुझे हार जाना चाहिये क्या ? [का]म भोग रूपी कीच में इसे नष्ट भ्रष्ट कर डालना मेरु जैसी भूल [क]रना है। जिंदगी का पल भर भी विश्वास नहीं और यौवन तो [च]ार दिन की चांदनी है यह विद्युत् के चमत्कार की नांई क्षणिक है, क्षण भर चमक लुप्त हो जायगा, एक पुल पर से वेग से जाने वाली ट्रेन को जाते हुए देर नहीं लगती, इसीतरह इस युवावस्था को निकलते देर न लगेगी काल की अनंतता का विचार करते तो सौ वर्ष का आयुष्य भी विद्युत् के चमत्कार जैसा ही है। इतने से अल्प समय के लिये मेरे या उनके क्षणिक सुख दुःख का मुझे

का विनाश होता हो तो बेशक हो "नत्थि जीवस्स नासोत्ति" इस वीरवाक्य पर मुझे पूर्ण श्रद्धा है इसलिये मैं किसी भी स्त्री का स्पर्श तक नहीं करूंगा। अपने मन से प्रभु की साक्षी द्वा श्रीजी ने ऐसे विशुद्ध ब्रह्मचर्य धर्म आदरने की भीषण प्रतिज्ञा की और वे अपनी आत्मा में नया उत्साह नया सतेज प्रकटा घर की तरफ फिरे। जुवानी में ऐसे विचार आना भी पूर्व पुण्योदय का ही फल है।

जरा जन जाळवी लेजे, अरे झेरी जुवानी छे।
कलंकित कीर्त्ति ने करशे, खरे ! वैरी जुवानी छे॥
अभिमाने करे अंधा करावे नीच ना धन्धा।
विचारो फेरवे सन्धा जुवानीतो गुमानी छे॥
बनाव्या कैकने कैदी, नखाव्या शीष कैक छेदी।
जुवानी शत्रु छे भेदी न मानो के मजानी छे॥
विकारो ने वळगनारी, बतावे पापनी बारी।
सुजाडे बुद्धि ना सारी, पीडा कारक पीछानी छे॥
समझ संसार ना प्राणी जुवानी मान मस्तानी।
अरे पण चार दोडांनी जुवानी जाण फानी छे॥
कथे शंकर झुठी काया झूठी संसार की माया।
जुवानीनी झूठी छाया जुठी आ जिन्दगानी छे॥
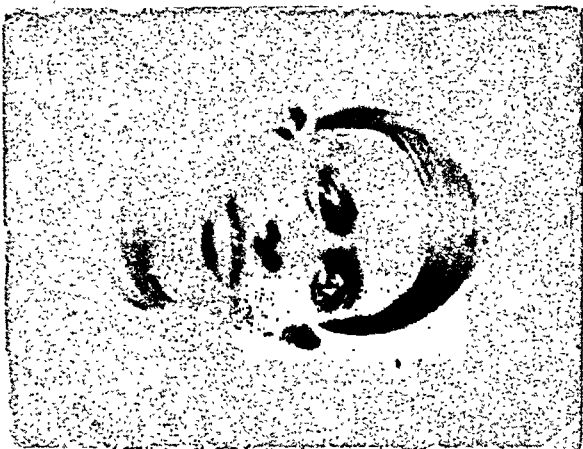
पूज्यश्रीना वडील बंधु शेठजी नाथुलालजी वंब–टोंक.

परोपकारी पारेख त्रीभोवनदास प्रागजी–राजकोट.

टोंकमां श्रीलालजीनुं मकान.
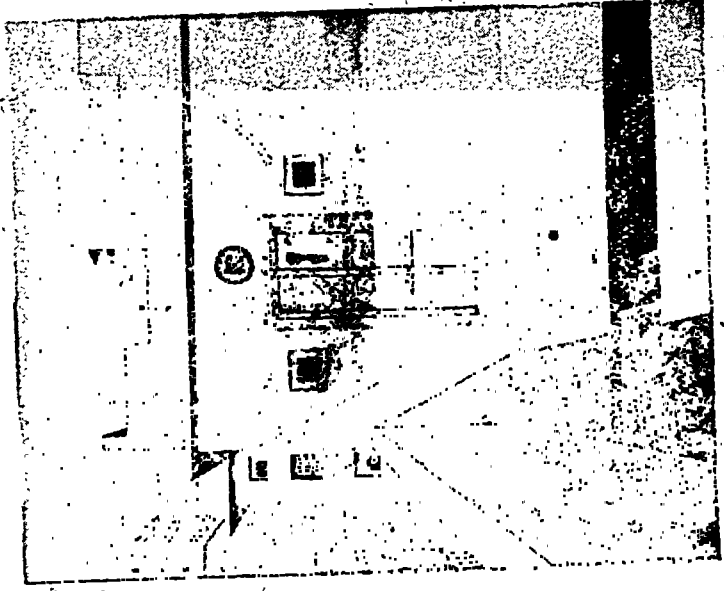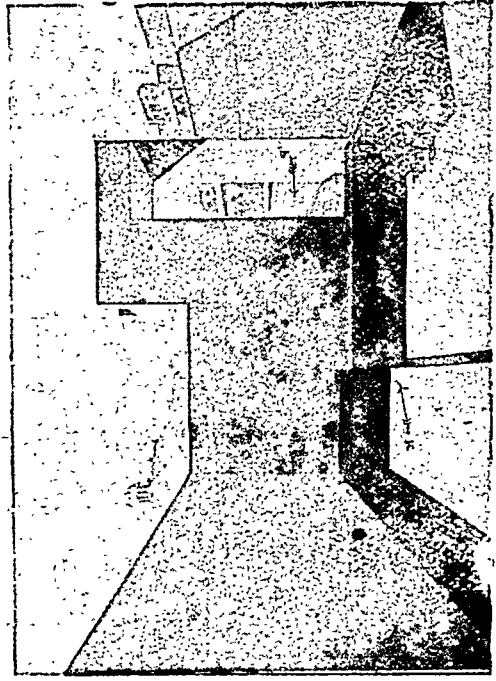
जे अगाशीमां श्रीलालजी बेसी वांचता ने त्यांथी कूदी पड्या.

उपरनी अगाशीमांथी जे अगासीमां कूदी पड्या ते.

मानकुंवर बाई को घर आये थोड़े ही दिन हुए। उनके विनयादि उत्तम गुण तथा कर्त्तव्य परायणता ने घर के सब मनुष्यों के मन हर लिये। सब कोई बहु की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता था परन्तु इससे मानकुंवर बाई को कुछ भी आनन्द न मिलता था। अपने पति की वैराग्यवृत्ति उनके हृदय को नोच खाती थी। जब २ वे अकेली रहतीं तब २ विचारमाला में गुंथाती और पति का मन किस तरह प्रसन्न करना तथा किन २ युक्ति प्रयुक्तियों द्वारा उनका प्रीतिपात्र बनना ये उपाय सोचने में ही प्रायः वे अपना सब समय व्यतीत करती थीं। "विनय यही महा वशीकरण है" यह महामंत्र आते ही सास ने इन्हें सिखा दिया था, इसीलिये वे हर तरह विनय, भक्ति द्वारा पति का मन प्रसन्न करने का प्रयत्न करती थीं परन्तु श्रीजी तो प्रायः इससे दूर ही रहना पसन्द करते थे।

विशेष कर वे पृथक् हवेली के पृथक् स्थान पर ही सोते, कचित् वार्तालाप करते और अधिक समय पढ़ने लिखने या धर्मानुष्ठान में ही व्यतीत करते थे। ऐसा होते भी उनकी पत्नी को यह मान्यता थी कि धीरे २ पति की मति को ठिकाने ला सकूंगी। उनके सासुजी भी प्रायः यही आश्वासन देते रहते थे. परन्तु आज का व्याख्यान सुनने के पश्चात् पर्वत पर की हुई प्रतिज्ञा के कारण श्रीजी के विचार, वाणी और व्यवहार में एकाएक बहुत परिवर्तन होगया। पत्नी के साथ एकान्तवास और वार्तालाप आज से हमेशा के लिये बन्द

होगया। इससे मानकुंवर बाई के हृदय में प्रज्वलित चिन्ताग्नि में घी होमा गया परन्तु वे बिल्कुल निराश न हुईं अपनी ......
प्रिय सखी आशा का उनने सर्वथा परित्याग न किया।

पति की सेवा करने तथा अपने हृदय के उभार पति से कह हृदय का भार हलका करने की तीव्र अभिलाषा होते भी मानकुंवर बाई कितने ही दिनों तक ऐसा अवसर न मिलने से सिर्फ अश्रुपात द्वारा ही हृदय का भार कम करती रहीं, कारण यह एक ही रास्ता इनके लिये खुला था। रातको तो श्रीजी उपाश्रय में या अपनी दूसरी हवेली में संवर करके सोते। दिन में बहुत कम समय घर रहते। कुटुम्ब अधिक होने से दिन में एकान्त में वार्तालाप करने का समय मिलना दुर्लभ था और फिर श्रीजी भी दूर २ भागते थे इसलिये मानकुंवर बाई के मन की सब आशाएं मन में ही रह जातीं। श्रीजी के माताजी तथा उनके मित्र इत्यादि इन्हें बार २ निवेदन कर कहते परन्तु श्रीजी के मन पर उसका कुछ असर न होता था।

एक दिन श्रीजी अपनी तीन मंजिली ऊंची हवेली की चांदनी में बैठे थे और जयपुर निवासी स्वर्गस्थ कवि जौहरी जेठमलजी चोरड़िया विरचित पद्यात्मक जम्बू चरित्र पढ़ने तथा उसकी कड़ियां कंठस्थ करने में लीन थे उस समय अवसर देखकर धीरे पांव

नकुंवर बाई पति के पास आ खड़ी हुई और नम्र आवयुत दीन
ाणी से, हाथ पकड़कर लाई हुई अबला की ओर अभिदृष्टि से
खने की प्रार्थना करने लगी। परन्तु काम को किम्पाक फल समझने
ाले और प्राण की आहुति देकर भी शियल व्रत के संरक्षण की
तिज्ञा लेने वाले दृढव्रतधारी महानुभाव श्रीलालजी ने नीचे नयन
ख मौनधारण कर लिया। युवती के सौजन्य, सौंदर्य, वाक्पटुता
और हावभाव उनके हृदय पर एकान्त होते भी कुछ असर पैदा न
कर सके। एकान्त में स्त्री के साथ रहना, वार्तालाप करना, उसके
करुण वचन सुनना, उसके हावभाव या अंगोपांग देखना प्रभृति
ब्रह्मचारियों के लिये अनिष्टकर और अकल्पनीय है ऐसा सोचकर
श्रीजी ने त्वरा से निकल भागने का निश्चय किया और उठ खड़े
हुए, परन्तु नीचे उतरने की पत्थर की सीढ़ियों की राह रोककर
मानकुंवर बाई खड़ी थी, इसलिये श्रीजी सीढ़ी के दूसरी ओर
चांदनी के दूसरे खंड में जल्द २ जाने लगे।

हृदय का भार कम करने के लिये प्राप्त अवसर से लाभ उठाने
और उन्हें भग न जाने देने का निश्चय कर युवती उनके पीछे २
कोमल पांव से चली और श्रीजी का हाथ पकड़ने के लिये अपना
कोमल करपल्लव बढ़ाया। अपना वही हाथ जो पिता ने पति को
हथलेवे के समय हाथ में सौंपा था। वही हाथ पति को फिर से
पकड़ने का विनय करने पर अबला की ओर आलदय ही रहा।

होगया । इससे मानकुंवर बाई के हृदय में प्रज्वलित चिन्ताग्नि में घी होमा गया परन्तु वे बिल्कुल निराश न हुई अपनी प्राणदायिनी प्रिय सखी आशा का उनने सर्वथा परित्याग न किया।

पति की सेवा करने तथा अपने हृदय के उभार पति से कह हृदय का भार हलका करने की तीव्र अभिलाषा होते भी मानकुंवर बाई कितने ही दिनों तक ऐसा अवसर न मिलने से सिर्फ अश्रु द्वारा ही हृदय का भार कम करती रहीं, कारण यह एक ही रास्ता इनके लिये खुला था । रातको तो श्रीजी उपाश्रय में या अपनी दूसरी हवेली में संवर करके सोते । दिन में बहुत कम समय घर रहते । कुटुम्ब अधिक होने से दिन में एकान्त में वार्तालाप करने का समय मिलना दुर्लभ था और फिर श्रीजी भी दूर २ भागते थे इसलिये मानकुंवर बाई के मन की सब आशाएं मन में ही रह जाती । श्रीजी के माताजी तथा उनके मित्र इत्यादि इन्हें बार २ निवेदन कर कहते परन्तु श्रीजी के मन पर उसका कुछ असर न होता था ।

एक दिन श्रीजी अपनी तीन मंजिली ऊंची हवेली की चांदनी में बैठे थे और जयपुर निवासी स्वर्गस्थ कवि जौहरी जठमलजी चोरड़िया विरचित पद्यात्मक जम्बू चरित्र पढ़ने तथा उसकी कड़ियां कंठस्थ करने में लीन थे उस समय अवसर देखकर धीरे पांव से

कीम तथा डाक्टर का इलाज कराने से थोड़े दिनों पश्चात् पग च्छा हो गया। परन्तु सर्वथा आराम न हुआ। यह तकलीफ तमाम जिन्दगी पर्य्यन्त रही। यह घटना सं० १९४० में घटी। उस समय श्रीजी की उम्र १५ वर्ष की थी परन्तु शरीर का बंध ठीक होने से वे १८ वर्ष के हों ऐसे दिखते थे।

भोग की लालसा को हृदय-देश में से हमेशा के लिये देश निकाला देने की हिम्मत करना, सुकुलवती और सुरूपवाली स्त्री का भर यौवन में परित्याग करना कुछ नन्हीं सी बात नहीं है। श्रीवीर प्रभु का उपदेश जिनके रग २ में रंगा हुआ है ऐसे आदर्श ब्रह्म-चारी श्रीलालजी ने यह उत्साह दिखाया। यह सचमुच प्रशंसनीय, वन्दनीय और आश्चर्य उत्पादक तथा सामान्य मनुष्यों की शक्ति के बाहर का है। जो कार्य संसार त्यागने पर भी कितने ही व्यक्तियों से न बन सका वह कार्य श्रीजी ने संसार में रहकर कर दिखाया। काजल की कोठरी में रहने पर भी कपड़े पर रेख न लगने देना बड़ा दुष्कर कार्य है। श्री वीर प्रभु की आज्ञा को श्रीजी प्राणों से भी अधिक मानते थे। चांदनी पर से कूद श्रीजी ने वीर प्रभु की आज्ञा का अनुकरण कर सच्ची वीरता दिखाई है। श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि :—

जहा बिरालावसहस्स मूले न मूसगाणं वसही पसत्था।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे न बंभयारिस्स खमो निवासो॥

अर्थ—जहां बिल्ली रहती हो वहां चूहे का रहना ठीक नहीं इसी तरह जहां स्त्री का निवास हो वहां ब्रह्मचारी का रहना हितकारी नहीं।

श्री दशवै कालिक सूत्र में कहा है कि :—

हत्थपायपडिच्छिन्नं कन्नं नासं विकप्पियं।
अविवाससयं नारिं बंभयारी विवज्जए॥

अर्थ—जिसके हाथ पांव छिन्न भिन्न हैं कान और नाक भी कटे हैं और सौ वर्ष की बुढ़िया है ऐसी स्त्री का भी ब्रह्मचारी को सहवास न करना चाहिये।

जहा कुक्कुटपोयस्स निच्चं कुललओ भयं।
एवं खु बंभयारिस्स, इत्थिविग्गहो भयं॥

अर्थ—जैसे कुक्कुट के बच्चे को हमेशा बिल्ली का भय रहता है तैसे ही ब्रह्मचारी को स्त्री की देह से भय उत्पन्न होता है।

श्री वीर प्रभु ने पवित्र जिनागम में ब्रह्मचर्य की भूरी भूरी प्रशंसा की है और ब्रह्मचर्य के भंग करने की अपेक्षा मरना भला

अध्याय ४ था

वैराग्य का वेग।

उपर्युक्त घटना के बीतने के थोड़े दिन पश्चात् श्रीजी ने अपनी माता के पास से विनयपूर्वक दीक्षा के लिये अनुमति मांगी। माजी के कोमल हृदय पर ये शब्द वज्राघात जैसे प्रहारी हुए तो भी इनने धैर्य धारण किया कारण ऐसे ही मतलब वाले शब्द वे आज से पहिले कई समय पुत्र के मुख से सुन चुकी थीं इस समय उनने इतना ही उत्तर दिया कि "संसार में रहकर भी धर्म, ध्यान क्या नहीं हो सकता? हमारी दया न आती हो तो कुछ नहीं परन्तु इस विचारी के ऊपर तो तुझे कुछ दया लानी चाहिये। इसका जन्म बिगाड़कर जाना यह महा अन्याय है। फिर भी अगर तुझे दीक्षा लेना है तो मेरा वचन मानकर थोड़े वर्ष संसार में बिता।" इतना कहते २ उनका हृदय भर गया और आंख में से आंसू गिरने लगे। श्रीजी ने अपना दृढ निश्चय दिखाते हुए कहा कि "माजी! आप कोटि उपाय करो तो भी मैं अब संसार में रहने वाला नहीं हूं। मुझे अब आज्ञा देओ तो संयम आराधन कर अपनी आत्मा का कल्याण करूं। आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है।"

श्रीधर भी आया है विशेषता में पूज्य श्री ने फरमाया कि उस
नाम तो श्रीलाल है परन्तु उसके गुणों की ओर ध्यान देते
कहना मुझे बड़ा अच्छा लगता है ' अपने छोटे भाई की ऐसे मह
पुरुष के मुंह से प्रशंसा सुनकर नाथूलालजी को कुछ आनन्द
परन्तु पूज्य श्री के मुंह से ऐसे शब्द सुनकर उन्हें यह भी
हुआ कि श्रीजी अब अपने घर में रहेंगे यह होना अशक्य है।

थोड़े ही समय में श्रीजी आकर अपने भाई से मिले
मिलते ही प्रश्न किया कि " भाई ! क्या आज ही तुम्हारे
मुझे पीछा घर जाना पड़ेगा ? मुझे यहां थोड़े दिन पूज्य श्री
सेवा का लाभ नहीं लेने दोगे ? नाथूलालजी ने कहा 'बड़े स्थानक में
पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के मोखमसिंहजी महा
राज विराजते हैं उनके दर्शन कर रवाना होना है। उस समय कुछ
आनाकानी न कर अपने बड़े भाई के साथ वे चल पड़े, यह उनके
हृदय की मृदुता और विनय गुण की पराकाष्ठा की सूचना है
चलते समय उन्होंने बड़े भाई से एक वचन मांग लिया था कि,
घर तो आता हूं परन्तु जिस हवेली में आप सब रहते हो उसमें
नहीं रहूंगा। बाहर की हवेली में अकेला ही रहूंगा। भाई ने उनकी
यह बात मंजूर की।

रतलाम से रवाना हो वे जावरे आये। वहां मुनि श्री रा

लजी कस्तूरचन्दजी तथा मगनलालजी महाराज विराजते थे नके दर्शन किये मुनि श्री मगनलालजी महाराज कि जो विद्यमान ाचार्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के गुरु थे उनको सज्भाय रने की अनुपम और अति आकर्षकशैली * देख श्रीलालजी ानन्दाश्चर्य हुए और इनकी सेवा में थोड़े दिन रहना मिले तो सा अच्छा हो ? ऐसा सोचने लगे, परन्तु भाई की इच्छा के ारण वे दूसरे दिन जावद आये। वहां श्री तेजसिंहजी महाराज भृति मुनिराज विराजते थे, उनके दर्शन किये और फिर दोनों ाई टोंक आये। नाथूलालजी का अपने छोटे भाई (श्रीजी) पर हुत प्रेम था। उन्हें हरतरह खुश रखना ऐसी उनकी खास इच्छा थी। इसीलिये राह में श्रीजी की मर्जी सम्पादन करने के लिये वे उनको महन्त पुरुषों के दर्शन तथा उनकी वाणी श्रवण करने कराने उतरते थे। उस समय नाथूलालजी की और २० श्रीजी की १५ वर्ष की उम्र थी।

टोंक आये पश्चात् श्रीजी बाहर की हवेली में अकेले रहते और पठन पाठन तथा धर्मानुष्ठान से जीवन सार्थक करते थे। उन्हें संसार कारागृह लगता था। दीक्षा ले आत्महित साधने की उनकी प्रबल

---

* सज्भाय करने की ऐसी ही शैली श्रीजी महाराज को भी प्राप्त हो गई थी और यह प्रसादी मगनलालजी महाराज की ओर से ही मिली हुई है ऐसा वे कहा करते थे।

ढूंढने निकले दूसरे ही दिन रवाना होकर कई शहर और
में होते हुए नागोर आये। नागोर में उन्हें एक चिट्ठी मिली
जो टोंक से सेठ हीरालालजी के पुत्र लक्ष्मीचंदजी की लिखी
थी। उसमें लिखा था कि नाथद्वारा में मुनि श्री चौथमलजी
राज विराजते हैं वहां श्रीजी है। इसलिये तुम वहां से
जाओ। इस पत्र के पाते ही नाथूलालजी नाथद्वारा की ओर
हुए। राह में कपासन मुकाम पर पं० मुनि श्री चौथमलजी
राज के दर्शन हुए और कपासन में तपास करने से मालूम
कि टोंक से लक्ष्मीचन्दजी नाथद्वारा आये थे और श्रीलालजी
बुला ले गए हैं। यह खबर सुनकर नाथूलालजी भी वहां से
टोंक आये।

उस समय भी श्रीजी बाहर की हवेली में अकेले रहते थे
वे कहीं भग न जांय, इसलिये उनके पास खास मनुष्य रक्खे
थे। उनके लिये भोजन भी वहीं पहुंचाया जाता था। ज्ञाति
रसोई में भोजन करने जाना उनने हमेशा के लिये बन्द कर
था। एक साधारण क़ैदी की तरह उनकी स्थिति थी।

जब २ अवसर मिलता तब २ वे अपनी मातुश्री और
को दीक्षा की आज्ञा देने के लिये प्रार्थना करते थे। आपस में
समय अधिक रसमय सुसम्वाद भी होता था। श्रीजी की मा

" सम्बन्धी जन स्वार्थी अर्थी सघला अंते रहे वेगला "

" व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयु परिस्रवति भिन्न घटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् " ॥

जरा बाघनी और रोग शत्रुओं के सदा प्रहार होते भी स्वार्थान्ध
ुष्य गफलत में पड़े रहते हैं, परिणाम यह होता है कि, छिद्र वाले
ड़े के जल की तरह यह पुण्यायु कम होता जाता है और मनकी मन में
रह जाती है ।

ाजी ! सत्य मानिये कि, मेरा वैराग्य मेण, लाख या काष्ठ के
ला जैसा नहीं है। परन्तु मट्टी के गोला जैसा है। उपसर्ग की अग्नि
वह अधिकाधिक परिपक्व होगा। इसलिये अब भी जो परिसह प्राप्त
गे वे हँसमुख से सहन करूंगा यह दृढ समझिये ! ऐसा कह
ोजी चले गए।

इन शब्दों ने माजी और भाई के मन पर बिजली जैसा असर
िया उसके परिणाम में उन्हें उपाश्रय जाने की परवानगी मिली
ौर किसी प्रकार का परिसह न देना देना निश्चय किया ।

एक समय वातचीत में श्रीजी ने दर्शाया था कि:—

नाथूलालजी तथा हरदेवजी जब टोंक से रवाना हुए थे टोंक रियासत से दोनों को पकड़ लाने के लिये वारंट ने था। वे वारंट के साथ सुन्हेल के सूबा साहिब को मिले। साहिब ने कहा तुम फिर से एक वक्त और समझाकर कहो कि, साहब का हुक्म है इसलिये चल पड़ो। अगर न माने तो मुझे कहो।

उन्होंने आकर वैसा ही किया परन्तु श्रीजी न माने। फिर सूभा साहिब से मिले। उन्होंने श्रीलालजी और गुजरमल को कचहरी में बुलाया। सुनेल के बहुत से श्रावक भी उनके थे। स्वाभाविक रीति से उन श्रावकों का श्रीजी पर पूज्यभाव रहा था। अल्प परिचय से तथा अल्प वय में ऐसी अ का सदुपदेश शैली से श्रीजी ने उनके मन जीत लिये थे। विषय मलिनता से निर्मल होकर निकले हुए शान्ति के प्रभावशाली की और सहवास में रहने वालों की अंतरात्मा में गहनभक्ति पूर्णत से भर रही थी।

प्राकृतिक नियम है कि मानव जाति के सहायक शुभेच्छुक और उपदेशक होना चाहते हों उन्हें याद रखना चाहिये कि, अपना अनुभव पूर्वादि महात्माओं की तरह— काइस्ट के कोस की तरह संकटों की शूली पर ही [illegible] न का सच्चा

ह, हृदय का सच्चा तत्व इनकी आत्मत्याग की वेदी पर सोने
की सार्थकता सिद्ध होती है। महात्मागान्धी इसी अभिप्राय को
नुमोदन देते हैं—फतह जब बिल्कुल समीप आकर खड़ी रहती
तब उसी राह से संकट भी सब से अधिक आते हैं। इस दुनियां
आजतक किसीको महान् फतह प्रारंभिक अनेक प्रयत्नों और
कष्टों को पीछे हटाने वाली एक अंतिम असाधारण कोशिश किये
ना नहीं मिली। प्राकृतिक चरम से चरम कसौटी बड़ी कठिन से कठिन
ती है। शैतान का अंतिम से अंतिम लालच सबसे अधिक लुभाने वाला
ता है। जो स्वतंत्रता अपने को प्यारी हो तो इस प्राकृतिक
सौटी में से अपने बिल्कुल शुद्ध पार उतरना चाहिये, शैतान के
रम लालच के लोभ से हरतरह अलग रहना चाहिये।

श्रावक समुदाय सहित श्रीजी तथा गुजरमलजी सूबा साहिब
के आफिस के चौक में खड़े रहे। उन्हें देखकर सूबा साहिब ने
आज्ञा की कि, तुम दोनों इनके साथ टोंक जाओ इनके पास टोंक स्टेट
का वारंट है तुम नहीं जाओगे तो कायदेसे गिरफ्तार कर तुम्हें टोंक
पहुंचाया जायगा।

यह सुन किसीसे न डरने वाले सत्याग्रही श्रीलालजी पग
पर पग चढ़ा एक पांव से खड़े होगये और सूबा साहिब से
बोले कि:—

"मैं यहां खड़ा हूं टोंक भेजना तो दूर रहा परंतु मुझे
स्थान से भी हटाना दुष्कर है हम साधु हैं, बुलाने से नहीं आते
भेजने से नहीं जाते, बैठते हैं तो लोहे की कील की तरह और
हैं तो पवन के वेग की तरह। आप राजा के अमलदार हैं
साधुओं को सताने का अधिकार आपको भी नहीं होसकता"।

एक विद्वान् के विचार सत्य हैं कि "किसी आपत्ति से तुम
अपनी श्रद्धा कभी मत हिलने दो, जब तक तुम्हारी अपनी आत्मा
पर दृढ़ आत्म श्रद्धा होगी, तबतक हमेशा तुम्हारे लिये आशा है।
जो तुमने आत्म श्रद्धा नहीं खोई और आगे बढ़ते ही रहे तो संसार
आगे पीछे कभी न कभी तुम्हारे लिये मार्ग देगा ही। श्रद्धा
को जन्म देती है, मनुष्य चारित्रबल से और अपने मस्तिष्क की
शक्ति से अत्यंत प्रतिकूल संयोगों में भी सफलता सिद्ध करते हैं।
श्रद्धा मानसिक सेना का महावीर है। यह दूसरी अनेक शक्तियों
को दुगुना तिगुना बल अर्पण करती है जब तक श्रद्धा नेता है तब
तक समग्र मानसिक सैन्य स्थित है, प्रत्येक व्यक्ति में गुप्त बल
अविनाशी शक्ति गर्भित है"।

भाग्यदेवी के लाड़ले पुत्र की दृढता और हिम्मत से उच्चारण
किये हुए वचन सुनकर सूबा साहिब दिग्मूढ बन गए और 'राजाका हुक्म
तुम्हें सिर चढ़ाना ही पड़ेगा' इतने शब्द कह भय से धूजते वे ऊपर

हुई। उनके साथ के ज्ञान संवाद में श्रीजी को अपार आनंद आता और अधिक ज्ञान सम्पादन होता था।

रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् झालावाड़ कोटा प्रभृति की ओर हो पांचों महात्मा पुरुष माधोपुर पधारे। पाठकों को विदित होगा कि, माधोपुर में श्रीजी का मौसाल था। और उनके मौसाल पक्ष का धर्मानुराग अधिक प्रशंसनीय था। श्रीजी को कैसे २ परिषह सहन करने पड़े यह सब वे जानते थे। श्रीजी के मामा के पुत्र लक्ष्मीचंदजी (देवदत्तजी के पौत्र) माधोपुर निवासी, मायाचंदजी पोरवाड़ प्रभृति श्रीजी तथा गुजरमलजीकी आज्ञा के लिये कोशिश की टोंक आकर इनके कुटम्बियों को नाना विधि से समझा दीक्षा की आज्ञा देने बाबत कहा।

प्रथम श्रीजी की मातु श्री चांदकुंवर बाई को अरज करने पर उन्होंने कहा कि, बहू को (श्रीजी की अर्धांगिनी) पूछने दो। उनकी ओर से क्या उत्तर मिलता है।

माजी ने फिर पुत्र वधू को बुलाकर पूछा कि, दीक्षा की आज्ञा देने में तुम्हारी क्या राय है ? मानकुंवर बाई ने विनय तथा धैर्यपूर्वक उत्तर दिया " आपने संसार में रहने के लिये जितने प्रयत्न हो सके किये परन्तु सब निष्फल गए। अब तो आपको और उन्हें सबको तकलीफ होती है इसलिये आप जो फरमायँगे मैं शिरोधार्य

ागी भाई भी नित्य प्रति व्याख्यान श्रवण का लाभ लेने लगे औ
उनमें से कितने ही ने श्रीजी से सम्यक्त्व भी ग्रहण की श्रीजी मह
ाज के अनुपम गुणों में सब लोग मुग्ध होते और कहते
सचमुच उस महात्मा का अस्तित्व जैन–शासन के पुनरुत्थान
लिये ही है।

ासी श्री उदयपुर राज्य अपने सिक्के में 'दोस्त लंडन' लिखते
चारों ओर की उच्च पहाड़ियां प्राकृतिक कोट के रूप में धम
हैं। यहां की जमीन ऊंची होने से कई जगह यहां
पानी जाता है परन्तु कहीं से भी उदयपुर में पानी नहीं आ
मेवाड़ की भूमि भी पवित्र गिनी जाती है। जैनियों के श्री ऋषभनाथ
श्रीकेशरियाजी, वैष्णवों के श्रीनाथजी और शैवों के श्री एकलिंग
इन तीनों धामों का राज्य की तरफ से पूर्ण मान सम्मान कि
जाता है। श्री ऋषभदेव स्वामी के पाटवी खानदान में होने से
तक ये "धर्मरक्षक" के समान अपना धर्म अदा करते हैं।
राज्य का मूलसिद्धान्त है कि, "जो दृढ राखे धर्म को तिह राखे करत
चक्रवर्ती राजाओं की सेवा में सोलह हजार और बत्तीस हजार
रहते थे वैसा ही हाल श्री उदयपुर के महाराणा साहब का
भी अपने सोलह और बत्तीस उमरावों में सूर्य के समान शोभा
निकलते हैं। कचहरी सवारी तथा राज्य की दूसरी रीति रिवाज

अध्याय १६ वाँ

रत्नपुरी में रत्नत्रयी की आराधना।

क्रमशः वहां से (कोठारीया नाथद्वारा से) विहार करते हुए श्री रतलाम कुछ समय के लिये पधारे। तब उनको श्री संघने र्मास करने के लिये अति आग्रहपूर्वक प्रार्थना की, किन्तु वह ीकृत हुई। और रतलाम से विहार करके श्रीजी पंचेड़ पधारे। ाम संघ के कई अग्रगण्य श्रावक भी दर्शनार्थ पंचेड़ गये वहां के स्वर्गीय कैप्टन ठाकुर साहिब * रघुनाथसिंहजी ने

---

* ये स्वर्गीय ठाकुरसाहिब तथा उनके भाई साहिब वर्तमान साहिब श्री चेनसिंहजी साहिब दोनों पूज्य श्री पर इतना अधिक द्धा एवं प्रेम) भाव रखते थे कि, उन श्रीमानों के फोटो इस क में यहां पर देना उचित होगा। 'पंचेड़' यह ग्राम मार्ग में ही के कारण पूज्य श्री का वहां पर समय समय पर पधारना । और श्रीमान् ठाकुर साहिब पूज्य श्री के उपदेश का लाभ उठाकर त स्वभाव के होगये थे। पूज्य श्री के दर्शनों का लाभ जिस समय । रतलाम में आते उस समय भी लिया करते थे।

तथा नाथद्वारा पधारे । उस समय कोठारिया के श्री रावतजी साहिब भी दर्शनार्थ पधारे और उन्होंने पूज्य श्री अर्ज की कि 'मैंने प्रथम आपके पास से जो प्रतिज्ञा ली उसका मैं यथार्थ पालन कर रहा हूं।'

रतलाम के बड़े २ वयोवृद्ध श्रावकों के मुख में से पुनः २ इस
र के वाक्य निकलते थे कि, " श्रीमान् उदयसागरजी महाराज
दि महापुरुषों के आगमन और उपस्थिति के समान ही लोगों
हृदय पर उग्र प्रभाव तथा उत्कृष्ट उत्साह दृष्टिगोचर होता है"।
, ध्यान, त्याग-प्रत्याख्यान करने के लिए श्रीमान् कदापि
ीको भी आग्रहपूर्वक नहीं कहते थे, उसी प्रकार न किसीको
बूर करते थे, ऐसी स्थिति में भी उनका उत्कृष्ट चारित्र और
म शक्तियों का आकर्षण इतना अधिक बढ़ गया था कि लोग
ं ही त्याग-पच्चक्खाण, धर्मध्यान, जप, तप, स्कंधादि विशेष २
ाह के साथ हार्दिक- उमंगों के साथ करने लगे। इस समय
र करणी, धर्मजागृति और ज्ञानवृद्धि इतनी अधिक हुई थी कि,
े वर्षों से उसको चौगुनी कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति न
।

इसके सिवाय विशेष चित्ताकर्षक बात यह है कि, राज्य कर्म-
गण साधु महात्माओं के सत्संग का लाभ बहुत कम उठाते
न्तु श्रीमान् के विराजने से उनकी अनुपम प्रशंसा सुनकर
के बड़े २ ओहदेदार, अमीर, उमराव, वकील इत्यादि पूज्य
सेवा में आने लगे और उनके ऊपर पूज्य श्री का इतना
 प्रभाव पड़ने लगा कि, वे पूज्य श्री के पूर्ण गुणानुरागी
प्रशंसक बन गये थे।

गाम ननाणा पेटे

ठाकरां देवीसिंहजी गोड़ इण मुजब सोगन कर्या मारा हाथसुं जानवर मातर नहीं मारुं माने चारभुजारा सोगन है कसाई लोगाने बेचणो नहीं देऊं ।

द० ठाकरां देवीसिंहजी द० जीतमल का

ठाकरां दुलेसिंहजी जोड़ भोमिया इण मुजब सोगन कर्या मारा हाथसुं जानवर मात्र खावा के वास्ते नहीं मारुं दाव मारा हाथसुं नहीं लगावणो मवेशी बिना सेंधा आदमी ने नहीं बेचुं

द० उदेसिंह

ठाकरां जालिमसिंहजी जागीरदार अमावली ई मुजब सोगन कर्या जींरी विगत मारा गाम में सुं गाय बिना आलखाणने बेचवा देवुं नहीं मारी सीम गाम अमावली में कोई जानवर मारी जाण में मारवा देवुं नहीं और मैं मारुं नहीं हरण खरगोश मारुं नहीं खाऊं नहीं और पंखेरु जानवर मारुं खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है।

द० जालमसिंह का हाथरा

॥ श्रीरामजी ॥

सावत

श्री पूजजी महाराज चांदड़ी पधारवा पर पंच सादड़ी ठिकाणा लुंदा अरज होवा पर निचे लिख्या मुजब छोड्या

सरदार वगैरे से भी छोड़ाया गया सो साबित है जानवर वगैरा ई मुजब सं १९६५ का जेठ वदी बुधवार ।

श्री रावली तरफ से

वेशाख कार्तीक में कसाई अमावस ग्यारस बकरा खज नहीं करेगा आगे भी बंदोबस्त हो परन्तु अब भी पुख्ता राखा जावेगा बारा ही महिनारी अमावास ग्यारस भी माफ है कातीक वैशाख दो महिना माफ और बाराही महिना की अग्यारस माफ ई साल में चेत्र मास में राज गन देवगन बारे है कसाई दुकान नहीं करेगा हिरण छीलरा रोज ग्यारस अमावास लुंदा में शिकार नहीं करेगा ।

द० पन्नालाल रांका श्री हजुर का हुक्म से

श्रीपरमेश्वरजी

सिक्को छे

सवरुप श्री ठाकरां राज श्री १०५ श्री मोतीसिहजी लाखावतंग जैनरा साधु पूजजी महाराज श्री श्री १००८ श्री श्री श्रीलालजी महाराज मोटा वत्तम पुरुपारो पधारणों वावरे हुश्रो तरे मैं वादणाने गया तरे इणा मुजब सोगन किया है सो जावजीव पालां जावसुं

१—शीकार में सूर वो नार सिवाय दुजो कोई जानवर मारा हाथसुं नहीं मारसुं

२—अमावस अगियारस महिना में तिन आवे है सो मास बारारी छतीस तिथी हुए सो मारा राज में जावजीव हलांसो (हल) अगतो देसी

३—बारसरी तिथीरे दिन कुंभार, लवार तेली स्वार्व, निभाड़ो, घाणी, एरणारो अगतो पालसी ने कसाई खटीकरो भी अगतो देसी

४—मारा राज में गाय वगैरे कसाई व परदेशी मुसलमान ने नहीं वेचसी

५—सुड़ कोकड़ रा खेतारो मारा राज में वारे नाम देवी बालण देसी नहीं बालसी सो राजरो कसुरवार होसी

६—आसोज सुद १० ने सालो साल नव जीव बकरा ११ रे कुकड़क गलाया जावसी

इणां मुजब पाला जावसी ए कलमां पीढ़ी दर पीढ़ी पालां जावसी सं० १६६४ पोश सुद १५ द० कामदार महेताव चंदरा छे श्री ठाकोर साहबरा हुकम सुं लिख दिनो छे

श्रीभेरुनाथजी श्रीरामजी

महोरछाप

सीधश्री महाराज महारावलजी श्री भोपालसिंहजी रा. भदेसर बचनात् बड़ी सादड़ी का समस्त ओसवाल माननारा पंचां सुं पर

सादापेच अपरंच थां अरज कीधी के मारवाड़ सुं सां के श्री पूज्य जी चतुरमासो करवात आवे है सो वठांसु कवाई है के मारो आवो वे है ई निमित्त कुछ उपकार वणो चावे ई वास्ते अठे हुकम है के सावन कातिक वैशाख तीनों महिना कसाई दुकान सदैव बंद रहेगा और इगियारस अमावस तो आगे सदैव सुं पाले है जो पले ही है ।

सिक्कोछै

सं० १९६५ का जेठ सुद १३
द० गीरधारी सिंह

श्रीएकलिंगजी　　　श्रीरामजी

राजस्थान गोगुन्दा मेवाड़　　　नंबर की
८५९

महोरछाप छे

स्वामीजी महाराज श्री पूज्यजी महाराज श्री श्रीलालजी को हालमें गोगुन्दे पधारणो हुओ आपका उपदेश की तारीफ सुण मारो भी सभा में जावो हुओ. जो उपदेश श्रीमान् को मैं सुणो मारो मन बहुत प्रसन्न हुओ और आप जैसा महात्मा का उपदेश सुं मैं हमेशा के वास्ते पंखेरू जानवरां की व हरण की शिकार छोड़

दी है। और अठै राजस्थान में आसोज सुदी ८ हमेशा सुं दो पाड़ा रो बलदान होवे है वी में सुं १ हमेशा के लिये बंध किधो सो मारी पुस्त दर पुस्त बंध रहेगी ई के पहले सं० १९६५ में स्वामिजी महाराज चोथमलजी को पधारवो हुओ जद श्री बड़ा हजुर २ बकरा हर साल अमरा करवा को प्रण कीधो वा अब तक चलो जावे है वीरो हमेशा अमल रहेगा मैं श्री पूजजी महाराज के ई उपकार के लिये जतरो धन्यवाद करूं थोड़ो है सं० १९७१ का जेठ बुदी ७ सोम०

द० राजराणा दलपतसिंह

नामदार महीयर नरेश.

राजा साहेब श्रीजननाथसिंहजी बहादूर.

महीयर राज्यना दयाळु दीवान
. र (रालाल गणेशाजी अंजारीया बी. ए.

श्री शारदा देवी पासे धर्म निमित्ते थती
जीव हिंसानो बहिष्कार.

सेठ मेघजीभाई थोभणभाई.

मुंबइ श्री श्वे. स्था. सकळ श्री संघना प्रमुख.
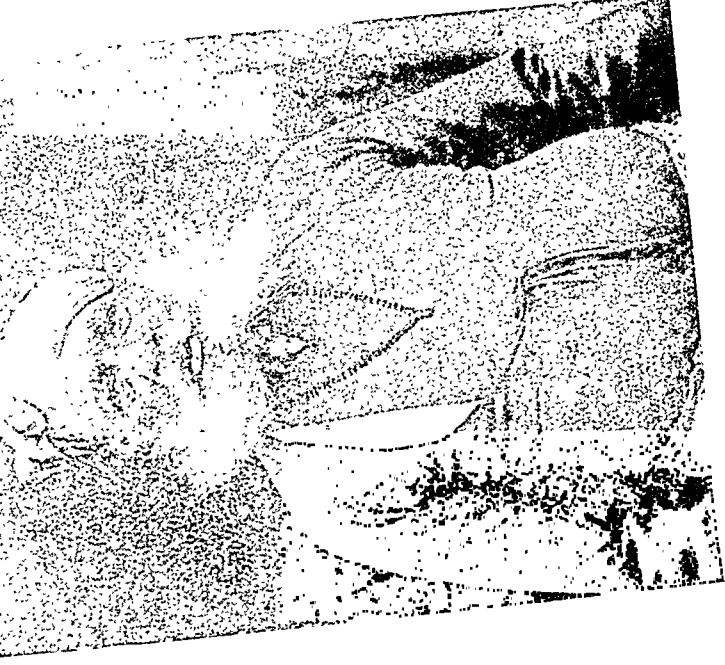
शेठ शांतीदास आसकरण जे. पी. मुंबाई.

महीयर राज्यमां वध बंध करावनार परमार्थी.

परिचय—परिशिष्ट २. प्रकरण ५२.

श्रीमान् महाराणा साहेबना ज्येष्ठ भ्राता
बावाजी सुरतसिंहजी साहेब—उदयपुर.
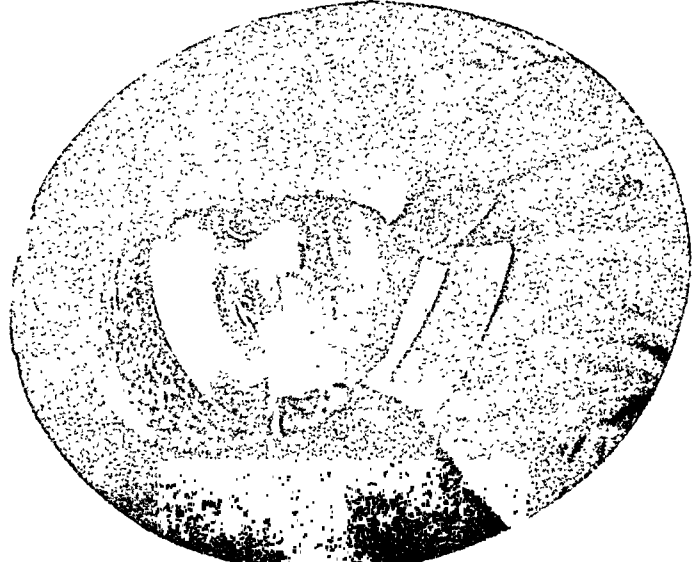
परिचय—प्रकरण ४४.

महीयर स्टेटमां धर्म निमित्ते थती हिंसा केम अटकी ?

महीयर राज्यमां एक हील उपर श्री शारदा देवीनुं मंदिर आवेलुं छे तेमां देवी निमित्ते अनेक प्रसंगे देवी भक्तो तरफथी बकरा, पाडा, विगेरे हजारो प्राणिओनो लांबा कालथी दर वर्षे भोग अपातो हतो के जे वात त्यांना दिवान साहेब रा. रा. हिरालाल गणेशजी अंजारीआने रुचिकर नहि लागवाथी तेओ आवा प्रकारनी करीपण हिंसा हमेशने माटे बंध थाय तेवुं इच्छता हता अने ते माटे तेओ श्रीए भी० भगवानलाल तथा भी० दुर्लभजी त्रिभुवनदास झवेरीने वात करतां ते उपरथी जो कांइपण सारे रस्ते लोकोने दोरवी ते हिंसा अटकावाय तो ते बाबत पोतानो विचार जणाव्यो हतो. आ उपरथी भी. दुर्लभजीए शेठ मेघजीभाई थोभण भाईने पत्र लखी आ हिंसा बंध करवा माटे कंईक इलाज लेवानी भलामण करी हती, ते उपरथी अमे तेमने खास आ कार्यमाटे महीयरना मे० दिवान साहेबनी मुलाकात लेवा मोकल्या हता के ज्यां तेओए नजरोजर आ करपीण हिंसायुक्त कार्यो जोयां हतां बाद दीवान साहेबे जणाव्युं के जो आ राज्यमां कोइ सखी गृहस्थ तरफथी एक सार्वजनिक लाभ माटे एक इस्पितालनुं मकान बंधावी देवामां आवे तो तेना बदलामां नामदार महीयरना महाराजा साहेबनी संमति मेलवी ते घातकी कार्य छुडाने माटे हुं बंध करावी सकुं. आ उपरथी भी. दुर्लभजीए हमने एकी-

कत जणावतां अमे नीचेनी शरते तेओ एक इस्पीताल बंधावी आपवा ठराव कर्यो हतो

शरतो.

१ महीसुर राज्यमां तमाम जाहेर देवलोमां हिंसा सदंतर बंध करवी.

२ ते बाबतना लेखीत हुकमो अमने त्यांना सत्तावालाओए आपवा.

३ आवी जातनी हिंसा बंध करीने ते बाबत श्री शारदा देवीना देवालय आगल ते बाबतनो राज्य तरफथी बे पीलर लगावी हिंदी तथा अंग्रेजी भाषामां शिला लेख लगाडवा.

४ अने ते इस्पीताल बंधाववा माटे रू० १५००१ अंके पंदर हजार अने एकनी रकम स्टेटने एवी शरते सोंपीए के ते इस्पीताल उपर आबाबतनो शिलालेख पण हमेशा माटे कायम राखवामां आवे अने पंदर हजारथी ओछी रकम खर्चवी नहि पण जो विशेष रकम जोइए तो स्टेट तरफथी ते आपवामां आवे अने इस्पीताल निरंतर निभाववानो सघलो खर्च राज्ये आपवो.

उपरना शरतो प्रमाणे ते राज्यना नामदार राजा साहेब अने नामदार दीवान साहेबनी नेक नाथ मल्हजी बहादुरे पोताना राज्यमां तेमना दीवान साहेबनी सलाहथी धार्मिक पशुवध हमेशने माटे बंध करवानो परमार्थि ठराव कर्यो छे अने आ ठराव निकल्यो ते बाबत लोक वर्तन करे तो लेने-दे नामजी सहित केटलानाजी सभा तथा सं० ५० पत्रोमां

करवाना ठराव ता. २ सप्टेम्बर १९२० ना रोज राज्य तरफथी प्रसिद्ध थयो छे. अने ते माटे अमे ते नामदारनो मानपूर्वक आभार मानीए छीए, दीवान साहेबनी असल सही सीक्कावाळा सदरहु ठरावोना फोटोग्राफोनी नकलो अमे जाहेर प्रजानी जाण माटे प्रसिद्ध करीए छीए, के जे जेथी भविष्यमां ते राज्यमां तेवो बनाव कदि दैवयोगे बनवा पामे तो अमारा आ दस्तावेजोनी साक्षी अने आधार द्वारा जाहेर प्रजा ते अटकावी शके.

वल्लभ टेरेस
सेन्डहर्स्ट रोड
मुम्बई नं, ४.

मेघजी थोभण
शांतिदास आशकरण.

अक्षरक अनुवाद

(१)

मिस्टर हीरालाल गणेशजी अंजारिया साहेब, बी. ए. दीवान रियासत मईहर तारीख २-९-१९२०

नम्बर १२९७......

(सही) हीरालालजी अंजारिया

मईयर राज्यना मंदिरोमां बकरां भैंसो बकरां तथा बीजा प्राणिओनां बलीदान आपवामां आवे छे. आ रूढी पसंद नहीं होवाथी हुकम करवामां आवे छे के श्री देवी शारदाजीना मंदिरमां अथवा

राज्यना कोई पण जाहेर मंदीरोमां कोईपण माणस कोईपण देवी अथवा देवताओना नाम उपर बकरां अथवा तो बीजां जनावरानो वध करवानी के बलीदान देवानी सख्त मनाई करवामां आवे छे. अने जे माणस आ हुकमनो भंग करशे अथवा कोई माणसने आ हुकम कोईए भंग कर्यानी खबर हशे अने ते दरबारमां ते बाबत नहीं रजु करशे, तो ते हुकमनो भंग करवा वालानो, अथवा तेवी खबर जाणवावालाने दरेकने ६–६ मास सुधी सख्त केदनी सजा अने ५०–५० पचास रुपया सुधी दंड करवामां आवशे अने जे माणस आ हुकमनो अनादर करवावालाने पकडी दरबारमां हाजर करशे तेने १० दश रुपिआ दंडनी रकममांथी पेस्वर कापी दरबारमांथी आपवामां आवशे, अने ते माणसने राज्यनुं हितेच्छु गणावामां आवशे. आ हुकमनो अमल आजनी तारीखथी करवामां आवशे.

(२)

लख्यूं

हु०

आ हुकमनी एक नकल रवीन्यु ओफीसरने मोकलवी अने लखवुं के तेओ जल्दीथी सर्व पुजारिओ तथा मानता लेवावालाने आ बाबत खबर दे अने सुपरिंटेन्डेन्ट सा० पोलीसने मोकली एवुं लखवामां आवे के राज्यना दरेक गामोमां हुकम छापी चोटाडवामां आवे अने दांडीद्वारा तेमां खबर देवामां आ

The killing of goats and animals in any public temple in in the Maihar State before or in the name of Sharda Devi or any God or Goddess, is strictly prohibited by the Maihar State on humanitarian principles, and at the instance of Messrs Megh Jibhai Thoban and Shantidass Ashkaran J.P. of Cutch, Mandvi who have, in memory of the prohibition arranged to dedicate Rs 15,000/- to Devi Shardaji with a request that the same may be spent in charitable purposes. The state was pleased to accede to their request and, in consultation with them, has decided to erect a hospital at a cost of not less than the sum provided.
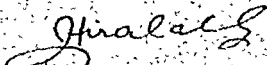
The hospital building shall be equipped, maintained and kept in repairs and all expenses borne by the state.

Two pillars shall be erected at the foot of the Sharda Devi Hill bearing inscriptions in English and in Hindi notifying to the public that killing of goats and other animals is prohibited, and that defaulters shall be punished.

If any animals or goats are dedicated to Sharda Devi or any other God or Goddess in any public temple in the state, they shall be taken charge of by the state and their maintenance provided for.

Maihar C.I.

The 2nd September, 1920.

Hiralal

Dewan, Maihar State, C.I.

Marble Slabs bearing the undermentioned notes in English and Hindi will be fixed in two pillars to be erected at the foot of the Sharda Devi hill at Maihar.

Notice

Sacrifice of animals in the Maihar State before or in the name of Sharda Devi or any god or godd in all public temples in the State is strictly prohibited by the State. No one shall, therfore slaughter or sacrifi any animal in the name of any god or goddess. Defaulter will be punished with rigorous imprisonment which may ext to six months and to pay a fine up to Rs50/- :

रुपकार इजलास खास मिस्टर हीरालाल एल अंजारिया साहब - बी - ए - दीवान

रियासत मईहर चक - २६/२/३० ई:

DEWAN

मुहर मद्कमा दीवान रियासत मैहर

MAIHAR STATE

रियासत मईहर के मंदिरान में अक्सर बकरा वा दीगर जानवरों का बलीदान किया जाताहै- यह काररवाई न पसंदीदा है इसलिये मुनासिब तसौवर किया जाताहै. कि श्री देवी शारदाजी के मंदिर में - या रियासतहाय के आम मंदरान में कोई शख्श किसी देवी व देवतोंव के नाम पर बकरा व दीगर जानवर काटने की व बली- दान देने की सख्त मुमानियत की जावे, अगर जो शख्श हुक्म हाजा के खिलाफ़ करेगा- या जिस शख्श को ऐसे नाजायज फेल करने की खबर होगा और वह- दरबार में इत्तला न करेगा- तो फेल करने वाले को - व - जानने वाले ६—६ माह तक मरव्वा कैद की सजा दी जायगी और ५०) — ५०) रुप्या तक जुरमाना किया जायगा और जो शख्श इस फेल के करने वाले को गिरफ़्तार करके दरबार में इत्तला देगा उस्को २०) रु० इनाम जुरमाना में से काटकर दरबार दिया जायगा और वह शख्श खैरख्वाह दरबार समझा जायगा और इसका अमल दरामद आज ही के तारीख से होगा- लिहाजा -

हु०

जरिये नकल रुबकारी [illegible] साहब को [illegible] दीवान [illegible] जाय [illegible] पुजारयान व मालीयान रियासत को [illegible] [illegible] [illegible] लिखा [illegible] रियासत [illegible]

अने महीअर तलपदमां हुकमनी नकल छपावी चोटाडवामां अने दांडी पिटावी जाहेर करवामां आवे अने दश २ पांच–पांच नकलो मजकुर राज्यनी आसपास जाण वास्ते मोकलवामां आवे अने एक नकल मजिस्ट्रेटने अने एक नकल बाजार मास्तर ने खबर माटे मोकलाववी असल नकल फाइलमां हाजर राखवी

(सही) फतेसिंहजी,
(सही) हीरालालजी अंजारिया.
दीवान महीयर.

नकल मा, शेठ मेघजी भाइ
अने शान्तिदास भाईने मोकलवी.

Sd. H. G. A.

10-9-20.

जीवदयाना सिद्धांतोने अनुसरीने महीयर राज्यना जाहेर देवलोमां देवी, शारदा देवी अथवा तो कोई देवदेवीओना शामे अगर तेमना नामे थतो बकराओ अथवा प्राणीओनो वध करवानी महीअर राज्ये सख्त मनाई करेली छे अने एना दाखला लइने कच्छ मांडवीना रहीश शेठ मेघजीभाई थोभण भाइ तथा शेठ शांतिदास आसकरण, जे. पी . जेओए रु. १५०००) नी रकम आ खर-

कामनी यादगीरीमां शारदा देवीने ते रकम जीवदयाना कार्यमां वा-परवा माटे अर्पण करवा विनंती करी छे. राज्य तेमनी विनंतीनो खुशीथी स्वीकार करे छे अने तेमनी साथे मसलत चाल्या पछी तेमना तरफथी अर्पण करवामां आवेली रकमथी ओछी नहीं तेटला खर्चेथी एक होसपीटल बांधवाना निर्णय उपर आव्युं छे.

आ हस्पीटलनुं मकान सज्ज करवानो, नीभाववानो, दुरस्त करवानो तथा तेने लगतो तमाम खर्च राज्य तरफथी उपाडवामां आवशे.

शारदा देवीना डुंगरनी तळेटीमां बे थंभो उभा करवामां आ-वशे अने जेमां इंग्रेजी तथा हिन्दुस्थानी भाषामां बकराओ तथा बीजां प्राणीओना थता वध अथवा बलीदान अटकाववानी अने कसुर करनारने सजा करवानी जाहेर खबरोना शीलालेख लगाड-वामां आवशे.

जो कोइपण प्राणी अथवा बकराने श्री शारदा देवीने अथवा तो कोई देव अगर देवीने जाहेर देवलोमां अर्पण करवामां आवशे तो तेनो कबजो राज्य तरफ थी संभाळी तेमनो खर्च राज्य तरफथी नीभाववामां आवशे.

मईयर, सी. आइ.	(सही) हीरालाल गणेशजी अंजारीया
ता० २७मी अक्टोबर १९२०	दीवान, मईयर स्टेट.

महीयरनी ईस्पीतालनो प्लान.

देवीने थतो कायमी वध बंध थवाना स्मरणार्थे तैयार थती होस्पीटल.

परिचय—परिशिष्ट २. प्रकरण ४५.

ईस्पीतालनी उपर लागनारो शिलालेख.

A Tablet bearing the following inscription will be fixed in a conspicuous place in the hospital building to be erected.

This hospital was built at the instance of Sheths Meghjibhai Thoban and Shantidas Ashkaran J.P of Cutch Mandvi who have paid Rs 1000/- towards the cost of its erection in token of their gratitude to the Raja Sahib Brijnath Singh Ji ...andur for the prohibition of animal sacrifice in all ...blic temples in the Maihar State for ever.

...aihar, Dated Second day of SEPTEMBER, 1920.

in the time of Dewan

...ral ... Ganesh Anjaria.

म्होर

महीयर, ता० २ जी ब्रप्टेंबर १९२०

(४) महीयर राज्यमां आवेला शारदादेवीना डुंगरनी तळे-
[illegible]मां उभा करवामां आवता बे स्थंभो उपर अंग्रेजी तथा हिन्दुस्थानी
[illegible]ने भाषामां नीचे दर्शावेली जाहेर खबरनी बे आरसनी तकतीओ
[illegible]डावयामां आवशे.

जाहेर खबर.

महीयर राज्यमां आवेला शारदा देवी अगर कोई देव अथवा
देवीना सारे अथवा तेमनी नाममां जाहेर देवलोमां तथा प्राणी वध
माटे राज्य तरफथी सख्त मनाई करवामां आवे छे. जेथी करीने
कोइपण मनुष्य कोइपण जातना प्राणीना कोइपण देव अथवा देवीना
[illegible]से वध अथवा तो बळीदान करी अथवा तो दई शकशे नहीं.

कसुर करनारने छ मास सुधीनी सख्त मजुरी साथेनी जेलनी
अने रु० ५० पचासना दंडनी सजा करवामां आवशे.

(सही) हीरालाल जी. अंजारीया. दीवान, महीयर स्टे

म्होर

नीचे दर्शाव्या मुजबनो शीलालेख बांधवामां आवती होस्पीटालना मकानमां (प्रसिध्ध) सुदृश्य जगाए लगाडवामां आवशे.

"आ होस्पीटल कच्छ मांडवीना रहीश शेठ मेघजीभाइ थोभन भाइ तथा शेठ शांतिदास आसकरण, जे. पी, जेओए, मईीयर राज्यनां सर्व जाहेर देवलोमां थता प्राणीवधनी अटकायतना माटे त्यांना महाराजा साहेब श्री ब्रीजनाथसिंहजी बहादुरना आभारनी यादगीरीमां तेनां बांधकामना खर्च बद्दल रु० १५००१) अंके पंद्र हजार एक अनायत करतां तेमना प्रेरणाथी बांधवामां आवे छे."

दीवान हिरालाल गणेशजी अजारीयाना वखतमां

मईीयर,
ता० २ जी सप्टेंबर, १९२०

(सही) हीरालाल गणेशजी अंजारीया.
दीवान, मईीयर स्टेट.

म्होर

परिशिष्ट ३

पूज्य श्री का, मुसलमीन भक्त सैयद असद्अली M. R. A. S. F. T. S. जोधपुर।

सैयद असद्अली लिखते हैं कि, जब श्री १००८ श्री पूज्य श्रीलालजी महाराज का चौमासा जोधपुर में हुआ था, मुझको श्रीपूज्य महाराज के उपदेश से फैजरुहानी (आत्मज्ञान) बहुत पहुंचा। मुझको श्रीपूज्य महाराज ने अत्यन्त कृपा करके नौकार मंत्र की कृपा करी और खुद श्रीपूज्य महाराज ने अपनी जुबान फैजतर जुबान (खास श्रीमुख) से जुबानी नौकार मंत्र याद कराया जो अबतक जपता हूं और बड़ा काम देता है—जैनधर्म का उपदेश लेने के बाद उन्हीं दिनों में मूढ लोगों से बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, यहां तक कि मूढ लोगों ने मुझे जान से मरवा डालने के उपाय किये थे। और दो तीन जगह दुष्ट लोगों ने मेरे बदन पर चोट भी पहुंचाई थी, इस वजह से कि, मेरे भाई अमीरहुसैन जिले गुड़गांव (देश-हरियाना) में डाक्टर थे। सो मैंने अपने भाई डाक्टर मजकूर से कहकर तमाम जिले में करीब ३००० तीन हजार के गौओं को बध होने से बचाया। जब कि, प्लेग उस तरफ फैला हुआ था और मेरे भाई डाक्टर मजकूर को हर तरह के अख्तियारात हासिल थे। इस काररवाई से रियासत जोधपुर में इस दया के काम के बाबत

खुशी के जलसे हुए थे और इन जलसों में तीन २ चार २ हजार आदमियों ने इकट्ठे होकर मानपत्र अर्पण किये थे।

दांता जिले गुजरात के राजा साहिब मेरे मेहरबान थे। वे राजा साहिब मौसूफ अम्बे भवानी के मन्दिर में तशरीफ लेगये थे मैं भी साथ में था वहां अम्बे भवानी के भेंट चढ़ाने को बकरे पचास २ के करीब आते थे याने जितने आदमी उतने ही बकरे अम्बे भवानी को ब गरज सुख शान्ति चढ़ाने लाते थे और यह बात राजा साहिब को भी बड़ी खुशी और मरजी की होती थी। मैंने राजा साहिब का और हाजरीन को 'अहिंसा परमो धर्म्मः' का मसला समझाकर और सुख शान्ति बराबर रहने का अपना जिम्मा लिया। चुनांचे राजा साहिब से बकरे छुड़ाने के बदले नकद रुपया अर्पण अम्बे भवानी जी के कराना मुकर्रर करा दिया जाता था और उन सब बकरों के कान में कड़ियां डलवा कर अमरे करादिये गये। सब तरह से सुख शान्ति रही किसी की आंख भी वहां नहीं दुखी। इस बाबत कई द्वेषी लोगों की तरफ से मुझपर बड़े २ जोर पड़े परन्तु मैंने धर्म मार्ग में किसी तरह तकलीफ पहुंचने की परवाह नहीं की, और राजा साहिब ने वहां सबको सरोपावा दिये थे वह भी मैंने वहां नहीं लिया। इस तरह पंजाब की तरफ एक रियासत में एक रईस को हजार २ कागले रोज मारने का शौक होगया था, और

मार २ कर बागिंग करते थे, जो कि, वहां पर इस रईस ने मुझको
खास उनकी मुशकिल के वक्त बुलाया था । मैंने वहां पहुंचते ही उन
रईस साहब से अर्ज कराई कि, मैं अब वापिस जोधपुर जाता हूं ।
आपका मुझसे जो खास काम है वह धरा रहेगा, लेकिन उन रईस
साहिब का मुझसे खास तौर से मतलब और ग़रज़ थी उन्होंने
ज़ल्दी से मुलाकात की और मुझसे पूछा कि, बिगर मुलाकात किये
वापिस क्यों जाते थे । मैंने कहा कि, मैं सुनता हूं कि, आप हज़ार
हज़ार कागलों का रोज़ मर्राह फक्त मनराजी के शकल में शिकार
करते हैं । इससे आपकी बड़ी बदनामी हो रही है और लोग गालियां
देते हैं और फक्त आपकी दिललगी के लिये हज़ारों जानों का
मुफ्त में नाश होता है । इस तरह उनको कई तरह समझाया तो र-
ईस ने आयन्दा के वास्ते ऐसी हिंसा करने की सौगन्द लेली । इसी
तरह एक रईस साहब जो जोधपुर में बड़े मुअज्जिज़ हैं ।
उनको उनकी इस किस्म की नामवरी ज़ाहिर कराने का बहुत
शौक हुआ तो उन्होंने बच्चे वाली कुतिया जंगल वग़ैरह से तलाश
कराकर मंगाना शुरू किया और उनके शरीर पर चिथड़े लिपटा,
लिपटा कर लैम्प के तेल के पीपों में उन कुतियों को डलवा देते खूब
तर करवाते पीछे दिया सलाई बतला देते जब वह बच्चे वाली कुतिया
जलती कूदती उछलती वह रईस साहिब मय जनाना के बहुत हंसते
खुश होते और इनाम तकसीम फरमाते इसी तरह सैकड़ों जानें कुतियों

और गधों की उन रईस साहिब ने ले डाली. जब मुझको मालूम हुआ मैं खुद उन रईस साहिब की खिदमत में गया और अपनी जान तक देना मंजूर किया और हर तरह समझा कर उनसे आइन्दा के वास्ते सोगन करा दी। लेकिन इस मौके पर यह ज़ाहिर कर देने काबिल है कि, उन रईस साहिब को इस पाप के अशुभ फल हाथों हाथ मिल गये। जिसको मारवाड़ के छोटे बड़े। जानते हैं। मुसलमानों में एक महात्मा मौलाना रूम हुए हैं। उन्हों ने भी उन की वाणी में लिखा है कि:-

तो मशोले खौफ़ अर हल्म खुदा।
देरगिरो सख्त गिरो मर तरा॥

जनाबेमन हमारे कलेजे कांपते हैं। हमारा दिल दुखता है, हमारी कलम में ज़रा ताकत नहीं कि, हम एक शिम्मा बराबर भी औसाफ हमारे परम दयालु, परम कृपालु, सत्य धर्म की नाव, ज्ञान के समुद्र, दया धर्मकी होली गाईड, श्री श्री १००८ श्री श्री पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का क्या लिख सकें, आपने हज़ारों पापियों को सत्य मार्गी और हज़ारों हिंसाकारों को "अहिंसा परमो धर्मः" पर आमिल बना दिया था। सैकड़ों चोरोंने चोरी और हिंसा के पेशे छोड़ दिए थे. मीने बावरियों तक ने तीर कमठे फैंक दिये थे और खेती वाड़ी पर गुज़रान करने लगे थे।

Indeed, I will never find such a prop-kari Guru on this world, like shri pujjya Shrilalji Maharaj again. His fatherly love & sympathy bring me into force, to weep for him once a day at least.

My Jiwan is usless now without his superium satsung, what I can write you, Sir, more than this ?

परिशिष्ट ४.

वर्तमान आचार्यश्री

चरित्रनायक सद्गत पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के पश्चात् भारतवर्ष की जैन साधुमार्गी सम्प्रदाय में सब से अधिक मुनि व आर्याजी वाली इस सम्प्रदाय का समस्त भार पूज्य श्री जवाहिर-लालजी महाराज के सुपुर्द हुआ, आप इस पद पर आरूढ होकर जैनधर्म को देदीप्यमान कर पूज्य पदवी दिपा रहे हैं। आपका संक्षिप्त परिचय पाठकों को करादेना आवश्यक है।

मालवा देशकी पवित्र उर्वरा भूमि में सं० १६३२ कार्तिक शुक्ला ४ को श्रीमती नाथीबाई के उदर से आपका जन्म थांदला ग्राम में हुआ। आपके पिता श्रीका नाम सेठ जीवराजजी था। आप बीसा ओसवाल कुंवार गोत्र में उत्पन्न हुए आपको बालवय से ही अनेक संकटों का सामना करना पड़ा। जब आप दो वर्ष के थे तब आपकी माता श्री एवम् चार वर्ष की अवस्था में आपके पिता श्री का देहान्त होगया। अतएव आप मौसार में रह पढ़ने लगे, मामा मूलचंदजी को व्यौपार कार्य में मदद भी देते और विद्याभ्यास भी करते थे. दैवात् मामाजी का आपकी चौदह वर्ष की अवस्थामें स्वर्गवास होगया, अत एव आप पर उनके समस्त कुटुम्ब बाल बच्चे

एवम् व्यौपारका समस्त भार आपड़ा आपने तीव्र बुद्धि से सबको यथोचित संभाला परंतु सांसारिक कई अनुभवों ने आपको वैराग्य में तल्लीन बनादिया आप संसार को असार समझ वैराग्यवंत हो दीक्षित होनेको तैयार हुए, परंतु आपके बड़े बाप (पिताके बड़ेभाई) ने आपको आज्ञा न दी । अतएव आप स्वयं भिक्षा लाकर गुजर करने लगे. वर्ष सवा वर्ष यों व्यतीत होने पर आपने सबकी आज्ञा ले महाराज श्री घासीलालजी महाराज श्री मगनलालजी के पास झाबुआ के समीप लीमड़ी ग्राम में सं० १९४८ में मगसर सुदी १ को दीक्षा अंगीकार की. परंतु दीक्षित होने के १॥ माह बाद ही आपके गुरुजी का परलोकवास होगया इतने अल्प समय में गुरुजी ने आपको अत्यंत शिक्षित बना दिया था उस गुरुतर मोह के कारण आपका मन उचट गया और आप पागल से होगए, पौने पांच माह पागलावस्था में रहे । दरम्यान तपस्वीजी श्री मोतीलालजी महाराज ने आपकी खूब सेवा सुश्रूषा की। आपके उस समय के पागलपनेके घावोंके निशान अभी तक मौजूद हैं। आपको भले चंगे किये और सब चातुर्मास प्रायः अपने साथ ही कराये, इसी कृतज्ञता के कारण पूज्य जवाहिरलालजी महाराज तपस्वीजी की आज तक सेवा कर रहे हैं और इस उपकार के स्मरणार्थ आप के पूर्ण अहसानमंद हैं। दीक्षा लिये पश्चात् आजतक आपके निम्नोक्त ३१ चातुर्मास हुए हैं ।

१ धार, २ रामपुरा, ३ जावरा, ४ थांदला, ५ परतापगढ़, ६ सेलाना, ७-८ खाचरोद, ९ महिदपुर, १० उदयपुर, ११ जोधपुर, १२ ब्यावर, १३ बीकानेर, १४ उदयपुर, १५ गंगापुर, १६ रतलाम, १७ थांदला, १८ जावरा, १९ इंदोर, २० अहमदनगर, २१ जुनेर, २२ घोड़नदी, २३ जामनगर, २४ अहमदनगर, २५ घोड़नदी, २६ मीरी, २७ दीवड़ा, २८ उदयपुर, २९ बीकानेर, ३० रतलाम, ३१ सतारा।

आप शुरू से ही विद्या के अत्यंत प्रेमी थे। आप संस्कृत पढ़े न थे परन्तु संस्कृत के काव्यादि आप बहुत प्रेमसे सीखते और मनन करते थे. जब आप दक्षिण की तरफ पधारे तब आपको सब अनुकूलता मिली और आप संस्कृतके धुरंधर विद्वान् होगए। आपका व्याख्यान आज अत्यंत प्रभावोत्पादक ढंग का वर्तमान शैली से होता है। आपके व्याख्यान से विद्वान् जन भी अत्यंत संतुष्ट हैं। आपने अत्यंत परिश्रम कर बहुत अधिक ज्ञान सम्पादन किया। कई ग्रंथ देखे उनमें से स्याद्वादमंजरी ' लघुसिद्धांतकौमुदी, मालापद्धति, न्यायदीपिका, परिश्रामण, विशेषावश्यक, रघुवंश, माघकाव्य, कादंबरी, वंशकुमार, किरातार्जुनीय, नेमिनिर्वाण, हितोपदेश इत्यादिका तो अभ्यास किया और तत्वार्थसूत्र, गोमटसार, महाराष्ट्रग्रंथज्ञानेश्वरी, रामदासका दास-बोध, लो. तिलक की गीता, कर्मयोग तुकारामजी की पुस्तकें, मनु-स्मृति, महाभारत, गीता, पुराण, उपनिषाद् इत्यादि जैन सूत्रोंके सिवाय

अन्य ग्रंथों का अवलोकन किया है। आप संस्कृत के पारंगत विद्वान् होकर हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाएं बोल सकते हैं। श्रीमान् लोकमान्य तिलक आपसे अहमदनगर में मिले थे। आपने जैन धर्म के सम्बन्ध में अपनी गीता में कई सुधार करना चाहे थे और लोकमान्य ने मंजूर भी किये थे। जैनधर्म के सम्बन्ध में जगत् प्रसिद्ध लोकमान्य तिलक महाराज के सुवर्णांकित शब्द ये हैं—

"जैन और वैदिक ये दोनों प्राचीन धर्म हैं। परन्तु अहिंसाधर्म का प्रणेता जैनधर्म ही है। जैनधर्म ने अपनी प्रबलता के कारण वैदिक धर्म पर कभी न मिटने वाली ऐसी उत्तम छाप बिठाई है"

वैदिक धर्म में अहिंसा को जो स्थान प्राप्त हुआ है वह जैनों के कारण ही है। अहिंसा धर्म के पूर्ण वारिस जैन ही हैं। अढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व वेद विधायक यज्ञों में हज़ारों पशुओं का वध होता था. परन्तु चौवीस सौ वर्ष पहिले जैनियों के चरम तिर्थंकर श्री महावीर स्वामी ने जब इस धर्म का पुनरोद्धार किया तब जैनियों के उपदेश से लोगों के चित्त अघोर निर्दय कर्म से विरक्त होने लगे और धीरे २ लोगों के चित्त में अहिंसा दृढ जम गई। उस समय के विचारशील वैदिक विद्वानों ने धर्म के रक्षार्थ पशुहिंसा बिल्कुल बंद करदी और अपने धर्म में अहिंसा को आदर पूर्वक स्थान दिया और अहिंसा मंडन कर अपने धर्म को बचाया, यह सब अहिंसा

धर्म के प्रणेता जैन धर्म का ही प्रभाव है। (प्रो० आनंद शंकर बापुभाई ध्रुव के लेख का कुछ अनुवाद)। आप के चातुर्मास जहां २ हुए वहां २ अत्यन्त उपकार हुए। उदयपुर के चातुर्मास में तपस्या के पूर पर किसना नाम के खटीक ने यावज्जीवन पर्यंत अपना क्रूरधन्धा बंद किया और उसने दूसरे नौ जनों को सुधारा, तेरापंथी साधु फौजमलजी के साथ जेतारण में एक माह तक आपने लिखित चर्चा की, उस समय मंदिरमार्गी व वैष्णव मध्यस्थ थे। इस के फल स्वरूप सद्गत मंदिरमार्गी महाराज श्री सीवजीरामजी का लेख मौजूद है।

आपने कई ठाकुरों का मांसाहार छुड़ाया तथा शिकार का त्याग कराया। कई मुसलमान श्रावक बनाये। कई जगहों के संघ के दो भाग दूर कराये व कुव्यवहार बंद कराये हैं। प्रोफेसर राममूर्ति ने शांतता से आपका व्याख्यान सुनकर फरमाया था कि, अगर ऐसे भारतवर्ष में दस व्याख्याता भी हो जाँय तो संसार का बड़ा भारी कल्याण हो जाय।

आपका शिष्य समुदाय विद्वान् और श्रद्धालु है। पूज्य पदवी प्राप्त हुए बाद आप श्री संघ एवम् साधु समाज में सिंह समान गर्ज रहे हैं। विशाल भाल, दिव्य चक्षु, उज्वल कांति, देदीप्यमान शरीर रचना इत्यादि इतने आकर्षक हैं और व्याख्यान शैली इतनी उत्कृष्ट शास्त्रीय, एवम् सरल है कि, श्रोता वर्शीपर नागके सदृश डोलते रहते हैं।

शिष्य समुदाय और श्री कोटापुर महाराजा साहिब–

सं० १६७७ मार्गशीर्ष वद ५ मंगलवार के दिन सिरिजम श्री १००८ घासीरामजी महाराज को लेकर हम आये। उसी दिन गोरे डाक्टर साहिब ने महाराज साहिब को देखकर निश्चय कर दिया कि, मार्गशीर्ष वद ३ गुरुवार को सफा खाना में आकर डेरा करो, और मिगसर वद ८ को शुक्रवार को आपरेशन किया जायगा।

हम इस बात के विचार में थे कि, अस्पताल में रहने से ४ बात साधुओंके कल्प से विरुद्ध पड़ेगी। उसका बन्दोबस्त डाक्टर साहिब से करना चाहिये जैसा कि, १ अस्पताल में नर्स वगैरह स्त्रीजाति सब काम करती है। और श्री महाराज साहिब स्त्रीजाति को छूते नहीं इसलिये स्त्री मात्र महाराज साहिब से स्पर्श न करें।

(२) पानी वगैरह कोई भी चीज अस्पताल के काम में नहीं आना चाहिये।

(३) अस्पताल के सब कमरों में रोशनी जलती है परंतु महाराज साहिब के कमरे में रोशनी नहीं होनी चाहिये।

(४) दूसरे कोई रोगी महाराज साहिब के कमरों में दोनों

साथ आजे साधु महाराज के सिवा नहीं रहने चाहिये । इसी विचार में थे कि, इतने में ही श्री गुरु देवों के प्रताप से कोल्हापुर के सेठ फतहचंदजी श्रीमालजी जिन्होंने सातारा में श्री १००८ घासीरामजी से सम्यक्त्व ली थी आन मिले । और फतहचंदजी डाक्टर साहिब के पहिले से मुलाकाती होने के सिवा कोल्हापुर के महाराज साहिब के मर्जीदानों में हैं । इस वास्ते फतहचंदजी ने कहा कि, मैं कोल्हापुर से महाराज साहिब की शिफारस डाक्टर साहिब के नाम लिखा लाऊंगा । जिसमें महाराज साहिब का कल्प के मुजब सब बन्दोबस्त हो जायगा । यह बात मार्गशीर्ष वद बुद्धवार की है ।

उसके दूसरे दिन ७ गुरुवार को महाराज साहिब कोल्हापुर गुरुदेवों के प्रताप से अकस्मात् उनके किसी हजूरी का अप्रेशन कराने के लिये अस्पताल मिरिजम में आगये उसी दिन श्री १००८ घासीलालजी महाराज साहिब भी डाक्टर साहिब के कथनानुसा अस्पताल में पहुंचे । सो सेठ फतहचंदजी ने महाराज साहिब से इन्ट्रोड्यूस (Introduse) श्री महाराज साहबको कराया और पीछे गोरे डाक्टर साहिबके रूबरूही कोल्हापुरके महाराजने श्री महाराज साहिबसे धर्म सम्बन्धी वार्तालाप किया । उस समय श्रीमहाराज साहिबने संस्कृत के अनेक गीता आदि ग्रंथों के श्लोकों से जैनधर्म का महत्व सिद्ध कर सुनाया जिन पर डाक्टर साहिब ने भी बहुत प्रसन्न होकर कहा

कि, मैं भी जैनतत्वों को सुनना समझना चाहता हूं। उस समय महाराज साहिब के पास ऐसी हेन्डबुक मौजूद थी जिसमें ऊपर संस्कृत श्लोक और नीचे अंग्रेजी तरजुमा भी थ वह किताब साहिब को दी सो साहिब ने बहुत खुशी से ले ली। उस व में कोल्हापुर के राजा साहिब ने डाक्टर साहब से खास तौर पर इन ब्दों में शिफारस की कि, ये हमारे गुरु महाराज हैं आप कल इनका अप्रेशन बहुत तवज्जह और मेहरबानी से करें" इस बात का असर डाक्टर साहिब पर ऐसा हुआ कि, जो चारों बातें ऊपर लिख आये हैं उन सबका इन्तजाम महाराज साहिब के कल्प के अनुसार हुआ और अप्रेशन करते समय भी बहुत तवज्जह से काम किया और सातारा वाले सेठ मोतीलालजी को भी अप्रेशन के समय में मौजूद रहने दिया। और खुद डाक्टर साहिब भी और अस्पताल के कुल कर्मचारी हिन्दू अंग्रेज वगैरह श्री महाराज साहिब को गुरु महाराज के नाम से बोलते हैं दोनों साधु महाराज और हम लोग महाराज साहिब के पास रात दिन हाजिर रहकर कल्प के अनुसार सेवा करने पाते हैं। और आहार पानी आदि का भी साधु नियमानुसार ही काम चलता है।

अप्रेशन के पूर्व दिन कोल्हापुर राजा साहिब कोल्हापुर से खास श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज के दर्शनार्थ सेठ फतहचंदजी को तथा कोल्हापुर संस्कृत के पंडित दिगम्बरी जैन को साथ लेकर मिरिज़म अस्पताल में आये और श्री महाराज के सामने कुर्सी पर

बैठकर मूर्तिपूजन चातुर्वर्ण्य जैन सिद्धांत आदि विषयों पर १॥ डेढ घंटा तक चर्चा की। और आते ही हाथ जोड़कर नमस्कार किया, और खड़े रहे। कहने से कुर्सी पर बैठे और पांव की जूती निकलवा कर कमरे से बाहिर भिजवा दीं और अतिनम्रता से बात करते थे तथा महत्व की बात नोट करते जाते थे। पहिली दफे के सिवा इस वक्त भी महाराज से कोल्हापुर जरूर पधार ने की विनती की और कहा कि, आपके जैन धर्म सिद्धांत मैं सुनूंगा और हमारे और लोगों को भी सुनाऊंगा।

डेरे पर जाकर सेठ फतहचंद जी से कहा कि, महाराज की बातें मुझे बहुत पसंद आई, महाराज को कोल्हापुर जरूर लाना। जिस समय राजा साहिब कोल्हापुर महाराज के पास आये थे. उस वक्त पं० दु:खमोचनजी भी मौजूद थे अतएव जान पहचान होजाने से २ वक्त डेरा पर पंडितजी को बुलाया और खूब मान देकर वार्तालाप करते रहे रात के ११ बजे सीख दी। उस समय में भी श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज साहिब के गुरु महाराज पद से हर बात में प्रशंसा करते थे। फक्त

श्री कोल्हापुर राजा साहिब के वास्ते मशहूर है कि, ये किसी देवी, देवता, पण्डित, संन्यासी आदि को मान नहीं देते हैं औ न हाथ जोड़कर किसी को नमस्कार करते हैं। परन्तु श्री १००८

घासीलालजी महाराज साहिब को हाथ जोड़कर आते जाते नमस्कार करने हरेक बातों में गुरु महाराज कहने नम्रता पूर्वक कोल्हापुर पधारने को वारंवार विनंति करने वगैरह सबब से सेठ मोतीलालजी साहिब ने ऐसा लिखा होगा सो ऊपर लिखी हकीकत से आप भी जैसा मुनासिब हो गौर फरमाइए।

मिरिज

मिशन हास्पिटल

प्राईवेट रूम नं० २

अभी महाराज साहिब अस्पताल में हैं, ३ । ४ दिनमें अस्पताल से रुकसद देने वास्ते साहिबने कहा है। और साहिब ने यहभी कहा है कि आराम होने पर हमारे बंगलेमें आप जरूर आवें। हम धर्म विषयमें बात चींत करना और जैन सिद्धांत सुनना चाहते हैं।

मुकाम सातारा शहर में स्वामीजी महाराज श्री १००८ श्री-घासीलालजी महाराज, श्रीगणेशलालजी, महाराज मय दूसरे साधुओं के साथ विराजमान थे। उस स्थानक में उनके पास महात्मा गांधीजी आए वह थोड़ी देर बाद ही मौलाना सोकतअलीजी मय दो दूसरे मुसलमान साहिब आए और महाराज श्रीघासीलालजी से हाथ जोड़ नमस्कार कर बैठ गये और कहा कि यह तखता जो बिछा

है आपको इसके ऊपर बैठना चाहिये था। आपकी वह जगह है
आप ज़मीन पर क्यों बैठे हैं। यहां तो हमारे बैठने का हक है। श्री
घासीलालजी महाराज ने कहा कि तख्ते पर तो हम व्याख्यान के
वक्त बैठते हैं और हम इस में कुछ ऊंच नीच नहीं खयाल करते हैं।
साधु है। उसके बाद गांधीजी ने श्री घासीलालजी महाराज से
कहा कि मैं जैन साधुओं और जैन सिद्धान्तों से अच्छी तरह वाकिफ
हूं और मैं जहां मौका मिलता है और साधुओं के पास जाता हूं
और अच्छा जानता हूं मगर आप लोगों में १ त्रुटि है वह यह है कि
आप अपने श्रावकों को हाल के माफिक उत्तेजन नहीं देते हैं—मे
यह त्रुटि निकाल देनी चाहिये। इस पर श्री घासीलालजी महा
राज ने जवाब दिया कि हमारा तालुक धर्म सम्बन्धी बातों से है र..
हम जैसी हमारे धर्म में रीति और आगना है उसी मुजब उपदेश
करते हैं। इससे ज्यादह कुछ नहीं कर सकते। इसी किस्मकी बात
चीत में करीब २५ मिनट के होगये थे और दोनों महात्मा की फेर
बात चीत करने की रुचि थी मगर थानक से बाहर सैकड़ों आदमि
की भीड़ लग गई थी उस से बहुत से आदमी हर किस्म के म
त्मा गांधीजी की जय बोलते अंदर एकदम घुस आये और महात्म
गांधीजी के पांव पड़ पड़कर उनकी और शौकतअली की जय बोलने
लगे और घेरलिया जिस से महात्मा गांधीजी और शौकतअली
जी दोनूं ने श्री घासीलालजी महाराज से हाथ जोड़ नमस्कार कर
ली और विदा होगए।

राफ्जा

ता० १८-१२-१९२० ई०

श्रीः

श्रीमन्साहू छत्रपति कोल्हापुर नरेश प्रत प्रशंसापत्रस्य प्रतिकृतिः

श्रीमतां श्री १००८ मोतीलालजी महाराजानां पूज्यप्रवर श्री १००८ श्रीजवाहिरलालजी महाराजनां सुशिष्यैः श्री १००८ घासीलालजी महाराजैः समगंछि मया मिरजाभिध ग्रामस्य भैषज्यालये। प्रागेव श्रुतैद्वृत्तान्तावयं सति साक्षात्कारेऽप्रादम मूर्त्तिपूजादि प्रधान जैन तत्त्व विषयान्। रुग्णासनासीना अपि एते महाराजा नः तथा सर्वं विषयानुदारतापूर्वेन जैनशास्त्रादिचार्यादि प्रधानोपाधिसाधातु महन्तीति मामकीनानुमतिः।

यद्य मी जनताभिः स्युः प्रोत्साहितास्तदा भवेयुर्भारत आर्य्यानूनायिकाः साधव इति मि० मार्ग० शु० ८ शनिवासरे संवत् १९७७

हस्ताक्षर साहू छत्रपति कोल्हापुराधीशस्य

अधोविन्यस्तरेखाद्वयस्थले.

(Sd.) साहू छत्रपति महाराज.